श्वम्भर 'मानव' के एकांकी

लहर और चट्टान

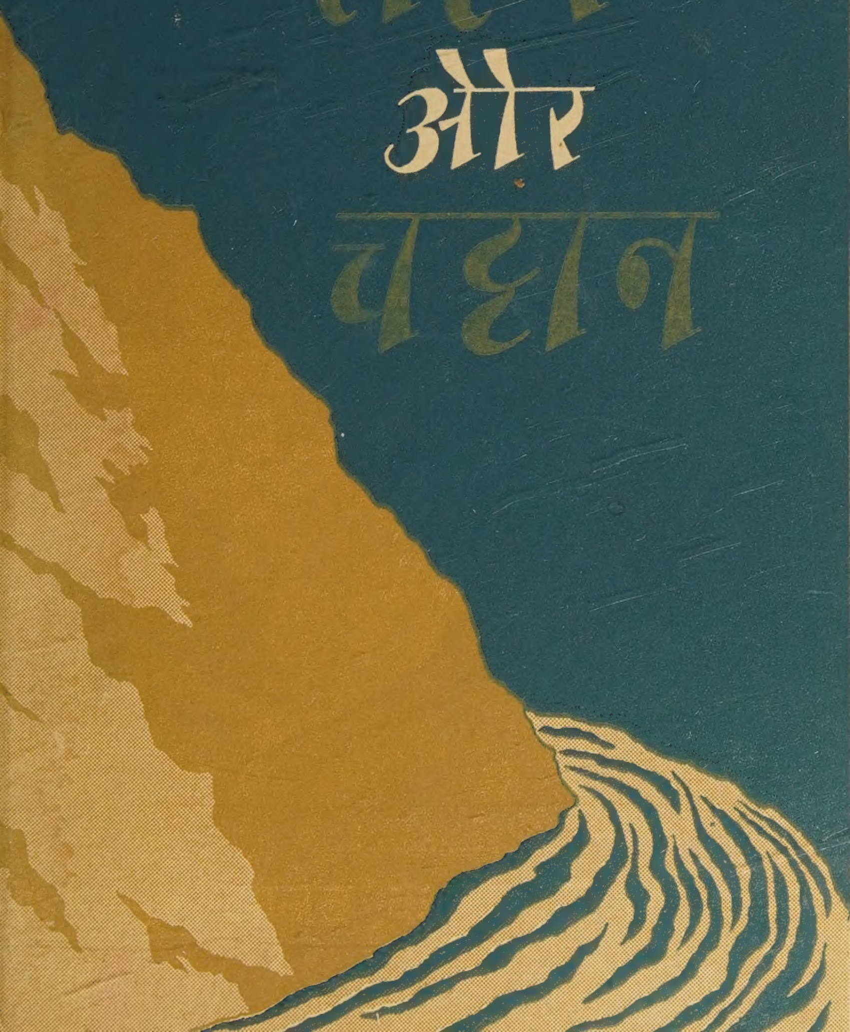

SYRACUSE
UNIVERSITY

LIBRARY

लहर और चट्टान

I-H-5111

Manav

लहर और चट्टान

विश्वम्भर 'मानव'

लोकभारती प्रकाशन

१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१

लोकभारती प्रकाशन
१५-ए, महात्मा गांधी मार्ग
इलाहाबाद-१ द्वारा प्रकाशित

●

© विश्वम्भर 'मानव'

●

द्वितीय संस्करण
१९६७

●

सुपरफ़ाइन प्रिंटर्स
१-सी बाई का बाग़
इलाहाबाद

मूल्य : ५·००

सावित्री जी को
जिनके कारण मेरे घर की शांति
कभी नष्ट नहीं हुई

Digitized by the Internet Archive
in 2026

https://archive.org/details/waverock0000vari

परिस्थिति

जीवन को क्षति पहुँचाकर कुछ भी करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ; अतः दुःख में मुझसे कुछ भी करते नहीं बनता—न लिखना न पूजा करना। और क्योंकि सुख मुझे बहुत कम मिला है; अतः मैं बहुत कम लिख पाया हूँ। मेरे सृजनात्मक साहित्य में यों व्यथा को अभिव्यक्ति ही अधिक हुई है; पर वह व्यथा-काल में नहीं, जीवन से छीने सुख के दौड़ते पलों में हुई है। इस बात का पछतावा मुझे बराबर रहा है कि इच्छा होने पर भी मैं अधिक नहीं लिख पाया; पर अपनी परिस्थितियों और मन की गति को देखते हुए जो लिख गया, वह भी बहुत अधिक प्रतीत होता है।

कविताओं, गद्य-गीतों और उपन्यासों के समान मेरे ये एकांकी भी उन परिस्थितियों, प्राणियों और पलों के प्रति आभार-प्रदर्शन मात्र हैं, जिन्होंने मरुभूमि जैसे मेरे व्यर्थ जीवन को अपनी मुस्कान की किरणों से जब-तब आलोकित किया है।

बिना सुख और सुविधा मिले जैसे मेरे लिए लिखना कठिन है, वैसे ही बिना प्रेरणा मिले भी मैं लेखनी नहीं उठा पाता। इन एकांकियों को लिखने की प्रेरणा तो अप्रत्याशित रूप से अनायास और अकस्मात् मिली। अतः कल्पना के उन साथियों के साथ जो इन एकांकियों की प्रधान पात्रियाँ हैं, एक और मुख कहीं धुँधला-सा और कहीं स्पष्ट इन पंक्तियों में तैरता दिखायी देगा।

प्रथम संस्करण अनेक वर्षों से अप्राप्य था। नए संस्करण में छः एकांकियों के साथ एक फ़ीचर और एक काव्य-रूपक और जोड़ दिए गए हैं। एकांकियों के अतिरिक्त फ़ीचर और काव्य-रूपक आज के युग को रेडियो की विशेष देन हैं।

८८८, कल्याणीदेवी
इलाहाबाद—३

—मानव

संकेत

संकीर्ण : १
भीगी पलकें : २१
चट्टानें : ५७
प्रेम का बंधन : ८७
संदेह का अंत : १११
जीवन साथी : १३१
वसंत की आत्मा : १५१
जय : १६६

संकीर्ण

पात्र

रामानंद	:	एक प्रसिद्ध डाक्टर
श्रीधर	:	एक धनी नवयुवक
चंद्रकांत	:	एक कहानी लेखक
शारदा	:	रामानंद की लड़की
धनिया	:	रामानंद की नौकरानी

(एक अत्यन्त प्रसिद्ध डाक्टर का बँगला। डाक्टर की लड़की शारदा एक मासिक-पत्र पढ़ रही है। वृद्धा नौकरानी धनिया आती है।)

धनिया : चलिए न बीबी जी। बाबू जी देर से बैठे हैं।

शारदा : तू चल, मैं आई।

धनिया : नहीं, मेरे साथ चलिए। बाबू जी मेरे ऊपर बिगड़ते हैं। कहते हैं बार-बार लौट आती है, साथ क्यों नहीं लिवाकर लाती ?

शारदा : ओफ़ ! बीच में बिल्कुल मत बोल। आधा पेज रह गया है। तू वहाँ तक पहुँचेगी नहीं, कि मैं आई।

धनिया : फिर पढ़ लीजिएगा। राम मेरे, रात-दिन पढ़ाई, पढ़ाई, पढ़ाई।

शारदा : ओ हो धनिया ! जितनी देर तूने मुझसे बहस करने में लगाई है, इतनी देर में तो मैं कहानी समाप्त भी कर देती। तू जा।

(रामानंद का प्रवेश)

रामानंद : बेटा शारदा ! तू तो बहुत तंग करती है। मुझे मरीज़ों को देखने जाना है और इधर चाय ठंडी हो रही है। जैसे-तैसे सुबह को थोड़ा समय निकाल पाता हूँ, उसमें भी तुझसे कभी-कभी बात नहीं हो पाती। तेरी मा क्या चल बसी....मुझे

(धनिया से) तू यहाँ क्या कर रही है ? जा, दूसरी चाय बना कर ला।

धनिया : जी, बहुत अच्छा !

रामानंद : जब पिता को मा का उत्तरदायित्व भी निभाना पड़ता है, तब किस कठिनाई का सामना करना पड़ता है....ओह !

शारदा : आप अप्रसन्न हो गए पिताजी ?

रामानंद : नहीं बेटा ! मेरी अवस्था बढ़ रही है। मैं अब नदी किनारे का वृक्ष हूँ, न जाने किस दिन टूट कर गिर पड़ूँ। मेरा काम ऐसा है कि बुलाने पर तुरंत जाना पड़ता है और इधर तू है कि अपने बुड्ढे बाप की कोई चिंता नहीं करती।

शारदा : आप पिताजी प्रेक्टिस बंद क्यों नहीं कर देते ?

रामानंद : व्यक्ति का कर्म व्यक्ति की साँस के साथ बंद होता है, बेटा।

शारदा : मैं एक कहानी पढ़ने में लग गई, पिताजी। अब ऐसा कष्ट आप को कभी नहीं दूँगी।

रामानंद : ऐसी क्या कहानी थी बेटी, जिसमें तू खाना-पीना भी भूल गई।

शारदा : ऐसे ही बाबू जी।
(रुककर) धनिया अभी नहीं आई। मैं देखूं, पिताजी ?

रामानंद : अच्छा, अब तू मुझे भी बहकाने लगी है। बता कैसी कहानी है। मैं भी तो सुनूँ। किसने लिखी है ?

शारदा : कोई नये लेखक हैं, पिता जी। नाम है....चंद्रकांत।

रामानंद : कहानी का शीर्षक क्या है ?

शारदा : शीर्षक है—"अंतर"।

रामानंद : और स्वयं कहानी ?

शारदा : कहानी बहुत दर्दभरी है बाबू जी, बहुत बड़ी है।

रामानंद : अच्छा, पूरी कहानी न सुना। लेखक कहना क्या चाहता है, इतना तो बता।

शारदा : यह तो स्पष्ट नहीं लिखा, पर जहाँ तक मैं समझ पायी हूँ कहानी से यह ध्वनि निकलती है पिता जी, कि एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में कोई अन्तर नहीं। यह छोटे-बड़े, धनी-निर्धन का अन्तर स्वयं मनुष्य का उत्पन्न किया हुआ है। मनुष्य पर सबसे अधिक अत्याचार यदि आज तक किसी ने किया है, तो स्वयं मनुष्य ने।

रामानंद : बात तो उसने मर्म पर उँगली रखने वाली कही है बेटा, पर दुनिया समझे तब न !

(शारदा बँगले के उद्यान में बैठी है। नगर के एक प्रसिद्ध एडवोकेट का लड़का श्रीधर आता है।)

श्रीधर : नमस्ते !

शारदा : (**चौंककर**) कौन ! अरे आप ! आइए।

श्रीधर : हमारे पास होने पर आप क्यों बधाई भेजने लगीं। सोचा स्वयं जाकर ही ले आवें।

शारदा : बधाई, बधाई, बहुत बहुत बधाई। अब आगे क्या इरादा है ?

श्रीधर : इरादा अभी कुछ नहीं। पिताजी ने इतना कमा लिया है कि मैं चाहूँ, तो भी पूरे जीवन भर समाप्त न हो। वैसे मेरी इच्छा पिता जी के समान एडवोकेट बनने की है।

शारदा : यह क्यों ?

श्रीधर : मेरी दृष्टि में दो ही पेशे ऐसे हैं जिनमें आदमी अंधाधुन्ध कमा सकता है—एक डाक्टर का, दूसरा वकील का। दिन में सौ रुपये भी जेब में आ सकते हैं, पाँच सौ भी और एक हज़ार भी। सब केस पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए आपके पिता और मेरे पिता की आमदनी का कोई ठिकाना है !

शारदा : (**आवाज़ देती है**) धनिया !

धनिया : जी।

शारदा : जा, जल-पान का प्रबन्ध कर।

धनिया : बहुत अच्छा।

श्रीधर : आप शारदा जी तमाम दिन क्या करती रहती हैं ?

शारदा : करने को यहाँ क्या है ? सुबह से शाम और शाम से सुबह करती हूँ।

श्रीधर : (**हँसता है**) खूब ! बहुत खूब।

(धनिया आती है)

धनिया : बीबी जी !

शारदा : तू इतनी जल्दी कैसे लौट आई ?

धनिया : कोई साहब डाक्टर साहब से मिलने आए हैं।

श्रीधर : वहीं बाहर के कमरे में बिठा दे। कोई मरीज़ होगा।

धनिया : नहीं, मरीज़ नहीं हैं। मैंने पूछा तो कहने लगे: मैं उनसे मिलने नहीं आया, उन्होंने मुझे बुलाया है।

शारदा : (**आश्चर्य से**) पिता जी ने बुलाया है! क्या नाम बतलाया?

धनिया : नाम तो कुछ 'कांत' 'कांत' बतलाते हैं।

शारदा : (**सोचकर**) चंद्रकांत तो नहीं?

धनिया : हाँ बीबी जी, बिल्कुल यही नाम।

शारदा : तो खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या ताक रही है। जा, यहीं बुला ला।

(**धनिया जाती है**)

श्रीधर : आप इन्हें पहले से जानती हैं?

शारदा : नहीं, केवल नाम सुना है।

श्रीधर : कैसे?

शारदा : देखिये, अभी पता लग जायगा।

(**चंद्रकांत प्रवेश करता है**)

चन्द्रकांत : नमस्ते।

शारदा : नमस्ते! पिता जी तो इस समय हैं नहीं। थोड़ी देर में आते होंगे। बैठिए।

श्रीधर : आप इसी शहर के रहने वाले हैं? पहले तो आपको कभी देखा नहीं।

चन्द्रकांत : नहीं। बाहर का रहने वाला हूँ। यहाँ अभी-अभी नया आया हूँ।

श्रीधर : आजकल आप क्या करते हैं?

चन्द्रकांत : मैं लिखता हूँ।

श्रीधर : वह तो मैंने समझ लिया, साहब! पर आप काम क्या करते हैं?

चन्द्रकांत : यह भी एक काम है, साहब!

शारदा : पर बाहर से तो आप लेखक जैसे बिल्कुल नहीं लगते?

चन्द्रकांत : ओह! मेरे बाल बिखरे हुए नहीं हैं, दाढ़ी बढ़ी हुई नहीं है

कमीज़ फटी हुई नहीं है, चेहरे की हवाइयाँ-सी जो नहीं उड़ रही हैं ! इसीलिए शायद !

शारदा : (हँसती है) उफ़ !

श्रीधर : कुछ भी हो, पर आप बात ख़ूब करते हैं ।

(रामानंद का प्रवेश)

रामा : बेटी शारदा ।

शारदा : पिता जी, देखिए तो हमारे यहाँ कौन-कौन आया है । ये श्रीधर जी और ये ।

रामा : आप ।

चंद्र : मैं चंद्रकांत हूँ । आपका कार्ड मुझे कल संध्या समय मिला ।

रामा : ओह ! तुम नवयुवक, मैं वृद्ध । मुझसे मिलकर तुम्हें क्या प्रसन्नता होगी ? पर शारदा ने तुम्हारी कहानियों की प्रशंसा में मेरे कान खा डाले । उनमें से एकाध को पढ़कर मुझे भी लगा तुम प्रतिभाशाली हो । हमारे देश को तुम जैसे लेखकों की आवश्यकता है ।

चंद्र : मुझे तो आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई । आवेश को अनुभव के पास आना ही चाहिये, तभी उसमें संतुलन आता है । आपने प्रोत्साहन के दो शब्द कहे, इससे मुझे मेरे काम में बल मिलेगा । लेखक का यही सम्बल है । पर सभी आप जैसे उदार और निर्मल हृदय नहीं होते । अधिकतर व्यक्ति तो नये लेखकों को हतोत्साह ही करते हैं ।

रामा : नहीं वह ठीक ढंग नहीं है । अच्छा तुम इनसे मिले ? ये श्रीधर....मेरे एक मित्र के पुत्र हैं और मुझे अपने पुत्र के समान ही प्रिय हैं ।

श्रीधर : जी, हम लोग एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर चुके हैं ।

शारदा : द्वन्द्व-युद्ध होते-होते बचा है, पिता जी ।

रामा : अच्छा हुआ, मैं बीच में आ गया ।

(**चंद्रकांत से**) यह मेरी इकलौती लड़की शारदा है । जब यह दो साल की थी, तभी इसकी मा इसे छोड़कर मर गई थी । उस समय ही इसका पिता हूँ और मैं ही इसकी मा ।

चंद्र : आपने मुझे किसलिए स्मरण किया था, यह तो मैं जान ही नहीं पाया।

रामा : क्यों बेटा ! अकारण कोई किसी को नहीं बुलाता क्या ? सब स्वार्थ ही देखते हैं ?

चंद्र : यह तो मैं नहीं कहता।

रामा : तुम जानते हो, कलाकारों से केवल मिलने में ही एक प्रकार का विशेष आनन्द आता है।

चंद्र : आपके अनुग्रह को मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

रामा : अच्छा तुम लोग बैठकर बातें करो। मैं जा रहा हूँ।

(रामानंद जाते है।)

× × ×

(रामानंद और चंद्रकांत बातचीत कर रहे हैं।)

रामा : तुम्हारा कितना बड़ा परिवार है ?

चंद्र : मा हैं, पिताजी हैं, एक छोटी बहिन है।

रामा : बहिन कितनी बड़ी है ?

चंद्र : विवाह के योग्य है।

रामा : उत्तरदायित्व तो कम नहीं। तुमने नौकरी नहीं की ?

चंद्र : मेरा स्वप्न एक स्वतंत्र साहित्यिक का जीवन व्यतीय करने का रहा है।

रामा : तुम्हारी माता जी इस काम से प्रसन्न हैं ?

चंद्र : नहीं। चाहती हैं मैं कोई सरकारी नौकर होता, तो अच्छी बात थी।

रामा : और तुम्हारे पिता ?

चंद्र : पुलिस की नौकरी पसन्द करते हैं।

रामा : क्यों ?

चंद्र : कहते हैं रौब-दाब रहता है।

रामा : (रुककर) लिखने से इतना मिल जाता है जिससे काम चल सके ?

चंद्र : कभी-कभी नहीं भी मिलता।

रामा : यदि मैं तुम्हारी कुछ सहायता करना चाहूँ, तो तुम उसे स्वीकार करोगे ?

चंद्र : किस रूप में ?

रामा : मैं लेखक तो हूँ नहीं बेटा, पर जितनी तुम्हारी अवस्था है, उतनी ही जब मेरी अवस्था थी....हाँ, उन्हीं दिनों की एक घटना है। मैं चाहता हूँ उसे कोई उपन्यास का रूप दे सके। इसमें मैं तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।

चंद्र : मुझे आपकी इच्छा पूरी करने में प्रसन्नता होगी। इसमें लेन-देन की कोई बात उठती ही नहीं।

(शारदा का प्रवेश)

शारदा : पिता जी !

रामा : शारदा आ रही है। यह प्रसङ्ग यहीं तक।

चन्द्र : मुझे आज्ञा मिले।

शारदा : नहीं, अभी नहीं, यह क्या बात है मि० चंद्रकांत कि आप पिता जी से चुपचाप बात करके चले जाते हैं ? आज मुझे भी आपकी कहानियों के सम्बन्ध में बहुत सी बातें पूछनी हैं ! उत्तर दीजिएगा न ?

रामा : अच्छा, तुम लोग उधर धूप में बैठकर बातें करो।
(धनिया से) धनिया।

धनिया : जी सरकार !

रामा : मेरा हुक्का ठीक कर और ड्राइवर से कह कि गाड़ी निकाले।

धनिया : अच्छा सरकार !

(जाती है)

× × ×

शारदा : संसार में सबसे बड़ी चीज़ आपकी दृष्टि में क्या है ?

चन्द्र : कलाकार।

शारदा : मैं समझी नहीं।

चन्द्र : यदि एक ओर सम्राट की सवारी जा रही हो और दूसरी ओर किसी पेड़ के नीचे कोई अंधा गायक इकतारा बजा रहा हो, तो वैभव के उस प्रदर्शन से आँख फेर मैं उसके गाने को सुनूँगा।

शारदा : कलाकार को आप इतना बड़ा क्यों समझते हैं ?

चन्द्र : इसलिए कि वह भगवान के समान सृष्टा है।

शारदा : पर औरों से उसकी श्रेष्ठता किस बात में है ?

चन्द्र : इस बात में कि और सब भेद, कलह, अशान्ति के बीज बोते हैं। केवल वही एक ऐसा प्राणी है जो प्रेम का संदेश-वाहक है।

(सहसा श्रीधर का प्रवेश)

श्रीधर : अरे भई, हम भी आपकी इस प्रेम-चर्चा में सम्मिलित हो सकते हैं ?

चन्द्र : आइए मि० श्रीधर ! हम तो बड़ी रूखी चर्चा कर रहे हैं। आप को भला इसमें क्या रस मिलेगा ?

श्रीधर : **(बैठता हुआ)** भई, हमने भी बहुत उपन्यास पढ़े, पर हमारी समझ में आज तक यह नहीं आया कि प्रेम कहते किसे हैं ? **(शारदा से)** आपको आपत्ति न हो तो मैं आपके लेखक जी से इस सम्बन्ध में कुछ पूछूँ ?

शारदा : मुझे क्या आपत्ति हो सकती है, यदि चंद्रकांत जी उत्तर देना चाहें तो।

चंद्र : मुझे तो उत्तर देने में प्रसन्नता ही होगी।

श्रीधर : आप प्रेम में विश्वास करते हैं ?

चन्द्र : हाँ !

श्रीधर : किसे कहते हैं प्रेम ?

चन्द्र : आकर्षण के स्थायित्य को प्रेम कहते हैं।

श्रीधर : आप बता सकते हैं किसी के प्रति आकर्षण क्यों होता है ?

चन्द्र : कुछ पूर्व-जन्म के संस्कारों के कारण, कुछ उन संस्कारों के कारण जिन्हें हम अपने माता-पिता से ग्रहण करते हैं, कुछ अपने वातावरण के

प्रभाव के कारण और कुछ अध्ययन-सम्बन्धी ज्ञान-संचय से हमारे मन में एक सुन्दर प्राणी का चित्र बन जाता है....उस....

शारदा : आप रुक क्यों गये ?

चंद्र : पता नहीं आपको कैसा लग रहा होगा ?

शारदा : नहीं नहीं, आप बात पूरी कीजिए। समस्त ज्ञान पवित्र है।

चंद्र : उस चित्र को लेकर हम संसार में बाहर घूमते हैं। ऐसा लगता है जैसे हमारे भीतर का प्राणी कहीं बाहर भीड़ में खो गया है। उस चित्र की झलक जहाँ भी थोड़ी-बहुत दिखाई दे जाती है, वहीं हम ठिठक जाते हैं....

श्रीधर : (बात काटकर) आप कहीं ठिठके हैं मि० चन्द्रकांत ?

शारदा : उफ़ ! आप तो किसी को बात नहीं करने देते मि० श्रीधर।

चंद्र : ऐसे स्थानों पर केवल आकर्षण होता है। पर जहाँ भीतर का चित्र पूरा पूरा दिखाई दे जाता है, वहीं लगता है इस व्यक्ति को हमने पहले कहीं देखा है, इससे हमारा कहीं पूर्व का परिचय है। ऐसे स्थान पर आकर्षण स्थायी हो जाता है। इसी को प्रेम कहते हैं।

श्रीधर : तब आप यह भी मानते होंगे कि जीवन में प्रेम केवल एक व्यक्ति से ही संभव है ?

चंद्र : निश्चित रूप से।

श्रीधर : परन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। मैं मानता हूँ प्रेम एक से अधिक से संभव है और यह बात मैं आपकी बात से ही सिद्ध कर सकता हूँ।

शारदा : कैसे ?

श्रीधर : यह तो इन्होंने ही माना कि प्रत्येक व्यक्ति किसी की खोज में है। वह कब मिलेगा इसका क्या पता है ?

चंद्र : कोई निश्चय नहीं।

श्रीधर : तब उस व्यक्ति से मिलने के पूर्व जीवन में और भी अनेक व्यक्तियों से हमारी भेंट हो सकती है ?

चंद्र : हो सकती है। इसमें असम्भव कुछ भी नहीं।

श्रीधर : एक प्राणी आज मुझे बहुत अच्छा लगता है, इतना अच्छा कि उसके

सामने मुझे कोई भी अच्छा नहीं लगता। उससे मेरे सम्बन्ध बढ़ सकते हैं। कल मैं एक दूसरे ऐसे व्यक्ति के संपर्क में आ सकता हूँ जो मुझे पहले से अधिक प्रभावित करे। ऐसी दशा में पहला व्यक्ति छूट जायगा और दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ जायगा। फिर किसी दिन एक तीसरा व्यक्ति मिल सकता है जो दूसरे को भी फीका कर दे। इस प्रकार प्रेम अनेक प्राणियों से हो सकता है। इसमें आपको क्या आपत्ति है ?

शारदा : देखती हूँ आपका वकालत पास करना व्यर्थ नहीं गया।

चंद्र : पहली आपत्ति तो यह है कि आप तो दस प्राणियों को छोड़कर निष्ठुरता से आगे बढ़ गए, पर यह बहुत संभव है कि वे दस व्यक्ति आपको न भुला सकें। आप जो इतने व्यक्तियों की आँखों में आँसू भर रहे हैं, इसका दोष किस पर है ? दूसरे इस बात का क्या प्रमाण है कि आप स्वाभाविक रूप से ऐसा कर रहे हैं ? हो सकता है यह आपकी कोरी दुष्टता हो। एक उद्दाम वृत्ति की तुष्टि के लिए ही आप ऐसा करते हों। तीसरे, आपके इस स्वभाव से जीवन भर कोई प्राणी आप पर विश्वास नहीं करेगा। यदि आप किसी लड़की को प्रेम करते हैं और उसे पता चले कि इसके पूर्व आप और चार लड़कियों को प्रेम कर चुके हैं, तो सबसे पहिली प्रतिक्रिया जो उसके मन में जगेगी वह यह कि जो व्यक्ति चार प्राणियों को छोड़ चुका है, वह मुझे भी छोड़ सकता है। प्रेम में सबसे पहिली आवश्यकता है विश्वास की।

श्रीधर : खैर, मैं आप से फिर तर्क करूँगा ?

चंद्र : अवश्य ! जब मन में आवे तब, आधी रात, पिछले पहर।

श्रीधर : लेकिन मैं जानता हूँ ये आदर्शवाद की बातें आप क्यों कर रहे हैं।

चंद्र : क्यों ?

श्रीधर : (व्यंग्य से) अरे जाने भी दीजिए।

चंद्र : (सहज भाव से) जाने दीजिए।

शारदा : (हँस कर) उफ़ ।

× × ×

(चंद्रकांत रामानन्द के सामने बैठा है ।)

रामा : बात आज से बहुत पूर्व वर्ष की है । आगरे में एक बहुत बड़े सरकारी पदाधिकारी रहते थे । उनकी एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी । उसका नाम कुछ रख दीजिए ।

चंद्र : वास्तविक नाम क्या था ?

रामा : नाम तो मंदाकिनी था । वैसे सब उसे मंदा कहते थे । अपने बँगले का एक कमरा उन्होंने एक विद्यार्थी को रहने को दे दिया था । मान लीजिए उसका नाम किशोर था । वह विद्यार्थी पढ़ने में जितना तेज़ था, पैसे का वैसे ही उसके पास अभाव था । मंदा कभी-कभी उधर से निकलती थी, पर दोनों में कभी कोई बात नहीं हुई । पता नहीं क्यों, जब वह पढ़ते-पढ़ते थक जाता था या अपने अभाव के जीवन से घबरा उठता था और मंदा पर उसकी उड़ती दृष्टि पड़ जाती थी तो वह सब कुछ भूल जाता था । धीरे-धीरे ऐसा होने लगा कि जिस दिन मंदा बाहर न निकलती, उस दिन उसे कुछ भी अच्छा न लगता और न उसका पढ़ने में मन ही लगता ।

चंद्र : फिर क्या हुआ ?

रामा : मंदा को एक दूसरा विद्यार्थी पढ़ाने आता था ! वह कभी-कभी उससे कुछ पूछ जाता था । कभी-कभी मंदा की प्रशंसा भी करता । एक दिन उसका अध्यापक कुछ भाव-पूर्ण हो उठा ।

चंद्र : तब ?

रामा : तब किशोर ने कहा : देखो, संसार में तीन आदमियों का कर्म जितना पवित्र है उतना कठिन भी ।

चंद्र : किस-किसका ?

रामा : डाक्टर, फोटोग्राफ़र और ट्यूटर का । डाक्टर सबके घर में जाता है, सबकी बहिन-बेटियों को स्पर्श करता है । रूप के सम्पर्क में वह आता

है। यदि वह कुभावना से स्पर्श करने लगे, तो उसका काम दो दिन भी नहीं चल सकता। और फिर कौन उसे अपने घर में घुसने देगा? फोटोग्राफ़र के यहाँ भी सुन्दर से सुन्दर युवतियाँ चित्र खिचवाने जाती हैं। उन चित्रों को वह जो भी माँगे उसे देने लगे, तो उनका दुरुपयोग हो सकता हैं। ट्यूटर का कर्म इससे भी कठोर है। डाक्टर सौंदर्य के सम्पर्क में आता है, पर रुग्ण सौंदर्य के, फोटोग्राफ़र के सामने भी सुन्दरता आती है, पर दो चार पलों के लिए, पर ट्यूटर के सामने सुन्दरता अपने सुन्दरतम वेश में नित्य-प्रति आती है। यदि वह भावुक हो उठे और अपना विश्वास खो दे, तो समाज में अव्यवस्था फैल जायगी।

चंद्र : इसका परिणाम क्या हुआ?

रामा : किशोर ने देखा अँधेरे में पहिली बार उसकी खिड़की के पास से कोई दीर्घ निश्वास फेंककर चला गया है और दूसरे दिन उस ट्यूटर को जवाब दे दिया गया।

(**शारदा का प्रवेश**)

शारदा : आज पिता जी चाय नहीं पियेंगे क्या?

रामा : ओह, शारदा आ रही है।
(**शारदा से**) पीयेंगे बेटी! देखो, ये तुम्हारे कहानी-लेखक बैठे हैं। इनके लिए भी।

शारदा : ज़रूर बाबू जी। आपको मालूम नहीं बाबू जी, ये बात बहुत सुन्दर करते हैं।

रामा : लेखक हैं न बेटी। सारी दुनिया इनकी बातों की नक़ल करके ही बात करना सीखती है। ये अच्छी बात न करेंगे तो कौन करेगा, पर पहले चाय तो पिला।

शारदा : अच्छा, पिताजी। (**जाती है**)

(**रामानन्द और चंद्रकान्त बातचीत कर रहे हैं**)

चंद्र : फिर क्या हुआ?

रामा : एक दिन जब संध्या ढल चुकी थी, पत्ती बसेरों को चले गए थे और घरों में दीपक जल उठे थे, तब किशोर ने देखा मंदा उसके सामने खड़ी है। वह अवाक् रह गया! बोला : आप! मंदा ने केवल इतना ही कहा: हाँ मैं! यह उनकी पहली भेंट थी।

चंद्र : आप तो पिता जी बहुत धीरे-धीरे सुनाते हैं। जल्दी-जल्दी सुनाइए।

रामा : एक दिन जब फिर मंदा उस कमरे में आई तो उसने कहा : देखती हूँ एक सप्ताह से पहिले कमीज़ आपके गले से नहीं उतरती।

"यदि उतरने लगे तो?" उसने पूछा।

"मुझे खुशी होगी।"

"ओह।"

"जिस, तरह नहाने के उपरांत शरीर को एक प्रकार की स्फूर्ति मिलती है, वैसे ही नए कपड़े पहनने से आत्मा को भी एक प्रकार की प्रसन्नता प्राप्त होती है। मुझे तो सदा ऐसा ही लगा है।" इतना कह कर एक लिफ़ाफ़ा उसने उसकी ओर बढ़ाया।

किशोर ने पूछा, "इसमें क्या है?"

"थोड़े से रुपये हैं। ये मेरे अपने हैं। इन्हें ले जाकर कल अपने लिए नए कपड़े बनवाइये।"

चंद्र : किशोर ने रुपयों को स्वीकार नहीं किया?

रामा : नहीं, कर लिया। वह 'ना' नहीं कर सका।

चंद्र : इसके उपरान्त?

रामा : एक दिन मंदा का विवाह हो गया।

चंद्र : किशोर के साथ न?

रामा : नहीं, एक धनी व्यक्ति के साथ।

चंद्र : मंदा ने अपने पिता से कुछ नहीं कहा?

रामा : कहा। पर उसकी बात किसी ने सुनी नहीं। पिता ने आग बबूला होकर उत्तर दिया, यदि एक सप्ताह के भीतर यह लड़का इस कमरे को खाली करके नहीं चला गया, तो 'शूट' कर दूँगा।

चंद्र : मंदा का फिर क्या हुआ?

रामा : पता नहीं। सुनते हैं फिर किसी ने उसे हँसते नहीं देखा।

चंद्र : और किशोर ?

रामा : दरिद्रता को अभिशाप समझ उसने संघर्ष किया। वह भी कहीं होगा।

चंद्र : फिर वे दोनों कभी नहीं मिले ?

रामा : नहीं।

(धनिया का प्रवेश)

धनिया : बाबू जी, चाय तैयार है। बीबी जी आ रही हैं।

शारदा : ओह ! चंद्रकांत बाबू ! आज लेखक जी को चाय नहीं मिलेगी।

रामा : (हँसकर) क्यों बेटो ?

शारदा : ये आप से ही बातें करते रहते हैं। हमसे नहीं करते।

रामा : नही, आज ये तुमसे भी बात करेंगे। मुझे इनसे वहुत आवश्यक काम था। वह पूरा हो चुका।

(शारदा और चंद्रकांत)

शारदा : यदि रहस्य की बात न हो, तो यह बताइए कि आपके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा क्या है ?

चंद्र : रहस्य की कोई बात नहीं। जब मैं पढ़ा करता था तो मेरी सबसे बड़ी इच्छा यही थी कि मैं किसी दिन एक सफल लेखक बनूं।

शारदा : यह तो बड़ी शुभ इच्छा है। इस इच्छा की पूर्ति में कौन बाधा डाल सकता है ?

चंद्र : साधना कां पथ ही ऐसा है कि उसमें अनेक प्रकार के विघ्न आकर खड़े हो जाते हैं। लेखक भी संसार का एक प्राणी है। वह लिखने बैठा कि उसकी मा ने कहा: लकड़ी खत्म हो गई हैं, इसी समय आयेंगी। प्रेरणा का समय तो होता नहीं। उसके मन में कुछ लिखने की बात उठी कि उसे अपना और अपने आश्रित जनों का पेट पालने के लिए काम पर जाना पड़ता है। काम से लौटने पर अपने को वह प्रायः इतना थका पाता है कि निजी काम करने की उसमें शक्ति ही नहीं रह जाती।

शारदा : तात्पर्य यह कि उसे आर्थिक चिंताओं से मुक्त होना चाहिए ?

चंद्र : और क्या ?

शारदा : यदि आपको उस प्रकार की चिंताओं से मुक्त कर दिया जाय तो आप अपना काम ठीक से कर सकेंगे ?

चंद्र : लेकिन, यह कैसे संभव है ?

शारदा : मान लीजिए, आपको कहीं से काफ़ी रुपया मिल जाय।

चंद्र : लेकिन, दान मैं किसी का स्वीकार नहीं कर सकता।

शारदा : अरे भई, दान कौन दे रहा है ? अपना पैसा ख़र्च करने में भी आपको कोई आपत्ति है ?

चंद्र : लेकिन, इतना पैसा मिल कैसे सकता है ?

शारदा : (हँसकर) समझ लीजिए, यह भी एक कल्पना है।

× × ×

(रामानन्द, शारदा और धनिया)

रामा : आज एक बहुत ही गंभीर विषय पर तुझसे बात करनी है बेटी ! तेरी मा होती तो तुझसे यह सब कुछ पूछना न पड़ता।

शारदा : ऐसी क्या बात है पिता जी ?

रामा : इस समय मुझे एक ही चिंता है और वह यह कि तेरे हाथ किसी तरह पीले हो जायँ। पिछले ज़माने के मा-बापों को तो बच्चों से पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी, पर अब बच्चे भी अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगे हैं; अतः उनका मन जान लेना भी ज़रूरी है। एक समय तो ऐसा था जब नाई ही लड़के को देख आता था और शादी पक्की हो जाती थी।

धनिया : नाई-ठाकुर की एक कहानी मुझे याद है, सरकार। कहें तो सुनाऊँ ?

रामा : सुना।

धनिया : एक नाई कहीं लड़का पक्का कर आया। लड़के वालों ने उसे कुछ रुपये भर दिये। जब वह लौटा तो लड़की वाले ने पूछा: लड़के की उम्र कितनी है ? बोला—बीस, बीस, बीस। और घर-बार ? बोला —अजी मालिक, ज़मीन पर तो पैर भी नहीं रखते, पालकी में चलते

हैं। और शील-स्वभाव ? कहने लगा—ऐसे हैं कि निगाह उठाकर नहीं देखते। शादी पक्की हो गई। जब लड़का आया तो पूरा बूढ़ा—उम्र साठ साल की, पैर से लँगड़ा और आँखों का अंधा। लड़की वाले ने कहा—नाई ठाकुर तुम लड़की को कहाँ कुएं में झोंक आए ? यह वर देखकर आए हो ? बोला उम्र के लिए मैंने पहिले ही कह दिया था,—बीस-बीस-बीस। साठ हुए कि नहीं ? पालकी में चलने को कहा था, सो न चल सकने की वजह से चलते हैं,—और आँखें हैं ही नहीं, किसी से क्या मिलावें ?

शारदा : (हँसती है) ओ धनिया।

रामा : इसी से तो उन पर से विश्वास उठ गया। पर मा-बाप तो ऐसा नहीं कर सकते। इसी से बेटा, सब देख-भाल कर मैंने तेरा संबंध श्रीधर से पक्का कर दिया है। मुझे वह लड़का बहुत पसंद है।

शारदा : तब मुझसे इसमें पूछने की क्या बात है पिताजी ?

रामा : नहीं, तूने प्रसन्न मन से उत्तर नहीं दिया।

शारदा : क्या यह आवश्यक है पिता जी कि धनी घर की लड़कियाँ धनी घराने में ही जायँ ? यदि ऐसा हुआ करता कि धनी घर की लड़कियाँ ग़रीब लड़कों से विवाह करतीं और धनी घर के लड़के ग़रीब लड़कियों से, तो समाज की बहुत-सी कुरीतियाँ मिट जातीं। शायद समाज अधिक सुखी रहता।

रामा : तुम्हारा विचार तो बुरा नहीं है बेटी, लेकिन बैर और प्रीति समान के साथ ही शोभा देती है। प्रत्येक मा-बाप की यह कामना रहती है कि उसकी लड़की उससे श्रेष्ठ घर में जाय।

शारदा : तब आप जहाँ भेज देंगे, मैं वही चली जाऊँगी पिता जी।

रामा : इससे तुम्हारी स्वर्गीय मा की आत्मा भी संतुष्ट होगी बेटी।

शारदा : (निःश्वास फेंककर) ठीक है पिताजी। मैं चलूं।

(जाती है)

रामा : तू क्या सोचती है धनिया ?

धनिया : मैं गँवारिन क्या जानूं सरकार। पर बिटिया इस संबंध से सुखी नहीं दिखाई देती।

रामा : कुछ नहीं। ऐसे ही होता है। जाओ!

(**विवाह सूचक शहनाई के स्वर**)

× × ×

(**रामानंद और शारदा**)

रामा : बेटी शारदा, इस विवाह में सब आये, पर चंद्रकांत नहीं आया। इसका मुझे थोड़ा खेद है। मैंने धनिया को भेजा तो है।

शारदा : लेखक आदमी हैं, बाबू जी। ध्यान नहीं रहा होगा।

(**धनिया आती है**)

रामा : चंद्रकांत बाबू मिले, धनिया?

धनिया : वे तो नहीं मिले बाबू जी। कल रात ही इस शहर को छोड़कर चले गए। उनके कमरे में उनके एक मित्र थे। उन्होंने हाथ से लिखी यह किताब आपको भेजी है।

रामा : ओफ़! चंद्रकान्त ने उपन्यास इतनी जल्दी समाप्त कर दिया। पढ़ो तो शारदा?

शारदा : नाम है 'दो फूल।'

रामा : 'दो फूल'। ठीक रखा है।

शारदा : समर्पण में लिखा है—आदरणीय डॉक्टर रामानन्द को।

रामा : बड़ा सज्जन लड़का है।

शारदा : आगे छोटी सी भूमिका है।

रामा : उसे भी सुनाओ।

शारदा : इस उपन्यास का कथानक एक सत्य घटना पर आधारित है जिसका पता मुझे एक अत्यन्त गंभीर व्यक्तित्व वाले व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर चला। बहुत दिनों की बात है, किसी नगर में दो प्राणी एक दूसरे को प्रेम करते थे। उनमें से लड़का ग़रीब घर का था और लड़की धनी घर की। प्रतिष्ठा की रक्षा के नाम पर लड़की के पिता ने अपनी कन्या का विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक धनी

व्यक्ति से कर दिया। जैसे उपयुक्त जल-वायु और प्रकाश न मिलने पर फूल नहीं खिल पाते, उसी प्रकार उन दो बिछुड़े हुए प्रेमियों के प्राणों के फूल फिर कभी नहीं खिल पाये।

रामा : बहुत सुन्दर लिखा है। समाप्त हुई भूमिका ?

शारदा : नहीं पिताजी, थोड़ी-सी और है।

रामा : उसे भी पढ़ो। इस पुस्तक को मैं बहुत सुन्दर ढंग से छपवाऊँगा।

शारदा : पर कहानी यहीं नहीं समाप्त होती। अपमान की चोट खा, लड़का अपने प्रयत्न से धनी बना। उसका विवाह हुआ और फिर उसके एक कन्या भी उत्पन्न हुई। एक दिन उसकी पुत्री भी एक ऐसे नवयुवक के सम्पर्क में आई जिसके पास धन को छोड़कर किसी गुण की कमी न थी। अपने जीवन में प्रेम का अनुभव करने पर जब उस लड़की ने उस नवयुवक को अपना जीवन-साथी चुनने का स्वप्न देखा, तो उसी पिता ने जो स्वयं सामाजिक स्थिति की असमानता का शिकार हो चुका था और वैसे दर्द को पहचानता था, समय आने पर अपनी पुत्री की भावना को वैसे ही निर्दयता से कुचल दिया जैसे पैरों से खिली कली को कुचल देते हैं और उसका विवाह उसकी इच्छा के विरुद्ध एक धनी व्यक्ति के साथ कर दिया।

रामा : बंद करो इसे। मैं नहीं सुन सकता। नहीं सुन सकता इसे।

शारदा : कहानी समाप्त हो गई, पिताजी।

(पांडुलिपि हाथ से गिर पड़ती है)

भीगी पलकें

पात्र

साधना	एक वृद्धा
माया	अनुपम
लता	कमलनयन
लाजो	राधाकांत

भीगी पलकें

(राधाकांत के घर पर अनुपम और माया बातचीत कर रहे हैं)

माया : आपकी यह बात तो मेरी समझ में नहीं आई, अनुपम बाबू !

अनुपम : बात अत्यन्त साधारण सी है, माया देवी। उसका अनुभव हम सभी करते हैं, पर सब ठीक से समझ नहीं पाते।

माया : तो आप समझाइए न।

अनुपम : क्या कुछ प्राणी ऐसे नहीं होते जो देखने में हमें बड़े प्रिय लगते हैं ? इच्छा होती है, उन्हें बार-बार देखें।

माया : हाँ, यह बात तो है।

अनुपम : और उन्हें देखने को इच्छा इतनी प्रबल होती है कि संसार की दृष्टि बचाकर हम उन्हें देखते हैं—इतना देखते हैं कि यदि हमें कोई देख ले तो कहे, हम पागल तो नहीं हो गए।

माया : हाँ !

अनुपम : कभी-कभी ऐसे व्यक्तियों के पास बैठने को मन करता है, करता है न ?

माया : (बिगड़कर) आप मुझसे क्या कहलाना चाहते हैं ?

अनुपम : (हँसकर) अच्छा छोड़िए, इस बात को आगे बढ़ाते ही नहीं। कभी-कभी ऐसे प्राणियों के सम्पर्क में हम आते हैं जिनकी ओर हम बहुत दिनों तक ध्यान ही नहीं देते, पर जब कभी उनके व्यवहार पर हमारा ध्यान जाता है तो उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है और तब हम कहते हैं इनका मन बहुत सुन्दर है।

माया : हाँ।

अनुपम : अपने जीवन में कभो ऐसे व्यक्ति से भी आपका सामना हुआ होगा

जो न देखने में आकर्षक है और न व्यवहार ही में कोमल; परन्तु जब बात करने लगता है तो चकित करता है।

माया : हाँ, हाँ, सरोजनी का भाई सुबोध ही है, आप किसी विषय पर उससे बातचीत कीजिए, यह पता ही न चलेगा कि वह कितना जानता है।

अनुपम : यही तो, पर कोई-कोई प्राणी ऐसा भी होता है जो हमें प्रभावित करके चला जाता है। उससे हम जीवन भर नहीं मिल पाते, पर उसे हम जीवन भर भूल भी नहीं पाते।

माया : ऐसा क्यों होता है ?

अनुपम : इसका उत्तर मैं फिर दूँगा, पर पहले यह बतलाइए, इस बात को आप मानती हैं या नहीं ?

माया : न मानने की इसमे कोई बात नहीं। लेकिन अनुपम बाबू·······

अनुपम : लेकिन क्या ?

माया : (भावुकता से) आप सदैव सिद्धान्त की बातें करते हैं, कभी जीवन की बात भी किया कीजिए······ठोस जीवन की।

(हँसती है)

(राधाकांत का प्रवेश)

राधा० : बेटी माया !

माया : हाँ, पिताजी।

राधा० : देख तो, साधना आ गई !

(साधना का प्रवेश)

साधना : नमस्ते दीदी !

माया : (प्यार से) आ साधना ! तेरे पर्चे ठीक हो गए ?

साधना : हाँ दीदी !

राधा० : अच्छा, तुम लोग बैठो !

अनुपम : आप माया देवी की छोटी बहिन हैं ?

माया : जी हाँ, यह मेरी छोटी बहिन है। अभी परीक्षा देकर आई है। सकुचाती बहुत है।

अनुपम : (साधना से) मेरा प्रश्न आप से था ।
साधना : आपको पता चल तो गया ।
अनुपम : नहीं, आप बताइए ।
माया : कह दे साधना । क्यों सकुचाती है ?
साधना : जी । कहिए ?
अनुपम : जब किसी अपरिचित से आप मिलती हैं तो उसे नमस्ते करने का आपके यहाँ कोई नियम नहीं है ?
साधना : (सटपटाकर) जी !

(माया हँसती है)

माया : अच्छा साधना तू जा । लाजो से कह चाय बनाये । न हो तो तू ही बनाकर ले आ ।

(साधना जाती है)

(अनुपम से) आप भी क्या आदमी हैं, अनुपम बाबू । अभी आप इसके स्वभाव को नहीं समझते । नाराज़ हो गई तो जीवन भर आपसे न बोलेगी ।
अनुपम : जब तक जीवन में एक प्राणी बोलने वाला है, तब तक तो कोई चिंता नहीं ।
माया : यह उस प्राणी का सौभाग्य है !

(लाजो का प्रवेश)

लाजो : चाय यहीं लाऊँ बीबी जी कि बड़े कमरे में रखूँ ?
माया : यहीं ले आ !
लाजो : अकेले बाबू जी के लिए लाऊँ कि आपके लिए भी ?
माया : (विरक्ति से) दोनों के लिए ले आ ।
लाजो : राम भला करें, छोटी बीबी जी अकेली रह जायँगी ।
माया : उसे यहीं भेज दे ।
लाजो : वह तो रूठी-रूठी सी हैं ।
माया : (झुंझलाहट से) क्या कर रही है वह ?

लाजो : बाबू जी से गुस्से में भरकर कुछ कह रही थीं।
अनुपम : (**व्यंग्य से**) राम भला करें, बाबू जी ने तब क्या कहा ?
लाजो : ये लो, मैंने क्या कहा, जो आप नराज हो गए !
माया : बोलती क्यों नहीं, बाबू जो क्या कह रहे थे ?
लाजो : राम भला करें, बाबू जी तो ज़ोर से हँस पड़े।

(**माया हँसती है**)

(**साधना और अनुपम बातें कर रहे हैं**)

साधना : तब प्राणी के जीवन का लक्ष्य क्या हैं, मि० अनुपम ?
अनुपम : इसका उत्तर देना इतना सरल तो नहीं है, साधना जी, फिर भी मैं एक शब्द में कहना चाहूँ तो कहूँगा........खोज।
साधना : किसकी खोज ?
अनुपम : साथी की खोज।
साधना : कैसे साथी की ?
अनुपम : ऐसे साथी की जो हमारे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की भूख को पूरा कर सके।
साधना : आपका आशय मैं ठीक से ग्रहण नहीं कर पाई ?
अनुपम : आपने बहुत के ऐसे विवाहित व्यक्तियों को देखा होगा जो थोड़े दिन बाद आपस में झगड़ने लगते हैं।
साधना : (उत्साहित होकर) हाँ, हाँ, इसका क्या कारण है ?
अनुपम : पंडित कुंडली तो मिला देता है, मन मिलाना उससे नहीं आता।
साधना : आप तो मजाक करते हैं। बताइए न ?
अनुपम : मंडप के नीचे केवल दुलहा-दुलहिन की गाँठ बाँधने से दोनों के मन को नहीं बाँधा जा सकता।
साधना : (झुंझलाकर) फिर वही पहेली। आपका मुझसे बात करने में मन नही लगता ? दीदी को बुलाऊँ ?
अनुपम : नहीं। मैंने सुना है आपको लिखने का शौक है। यदि आपके पति

ऐसे हों कि साहित्य के नाम से चिढ़ते हों तो क्या परिणाम होगा ?

साधना : प्रश्न व्यक्तिगत न हो गया होता तो मैं उत्तर देती।

अनुपम : अच्छा दूसरी तरह इस प्रश्न को देखिए। मान लीजिए एक व्यक्ति साहित्यिक है और उसकी पत्नी बेपढ़ी-लिखी। यदि वह साहित्य-चर्चा के लिए तरसता है, तो क्या परिणाम होगा ?

साधना : यह क्या आवश्यक है कि साहित्य-चर्चा वह अपनी पत्नी से ही करे ? बाहर भी तो कर सकता है ?

अनुपम : बाहर तो घर से बाहर रहकर ही कर सकता है न ?

साधना : और क्या ?

अनुपम : इन साहित्यिक मित्रों में स्त्री पुरुष दोनों हो सकते हैं ?

साधना : होंगे ही।

अनुपम : यदि इनमें से वह किसी के साथ अधिक घनिष्ट हो जाय, तो ?

साधना : तो हो जाय ! इसमें आपत्ति की क्या बात है ?

अनुपम : सोचकर उत्तर दीजिए।

साधना : सोचकर ही कह रही हूँ।

अनुपम : यदि वह मित्र स्त्री हो ?

साधना : (**चौंककर**) स्त्री ! स्त्री तो ठीक नहीं।

अनुपम : लेकिन होता यही है। यदि हमारा साथी हमारी किसी भी आशा को विफल करेगा, तो जीवन दुःखान्त होगा।

(**लता प्रवेश करती है**)

लता : (**हँसती हुई**) नमस्ते जी।

साधना : तू कब आई लता ?

लता : मैं तो आज ही आई। यह क्या सुखान्त दुःखान्त की चर्चा हो रही थी ?

साधना : अरी कुछ नहीं। यही पूछ रही थी कि नाटक सुखान्त अच्छा होता है कि दुःखान्त ? तू बैठ। मैं अभी जीजी को बुलाकर लाई।

(**जाती है**)

लता : क्षमा चाहती हूँ, आपकी साहित्य-चर्चा में मैंने विघ्न डाल दिया। हाँ, नाटक सुखान्त अच्छा होता है कि दुःखान्त ?

अनुपम : नाटक का सुखान्त या दुःखान्त होना नाटककार के हाथ में नहीं, घटनाओं की गति पर निर्भर करता है।

(माया और साधना प्रवेश करती हैं)

माया : तू ख़ूब आई लता। इस बार तो बहुत कमज़ोर हो गई है।

लता : कमज़ोर कहाँ हो गई हूँ ? तुम दोनों से तो अब भी मोटी हूँ।

माया : आ तेरा परिचय करा दूँ।

अनुपम : मैं समझता हूँ अब परिचय कराना बेकार है।

साधना : तब आप दोनों एक दूसरे का परिचय स्वयं पा चुके हैं। यह भी अच्छा ढंग है।

अनुपम : है। आपको क्यों बुरा लगा ?

साधना : (**चिढ़कर**) मुझे क्यों बुरा लगता ?

माया : तू तो हर बात पर चिढ़ जाती है साधना। बैठ जा। (**अनुपम से**) देखिए लता कह रही है इसने एक नाटक लिखा है। उसे आप देख लीजिए।

अनुपम : अवश्य।

लता : इसके लिए आपको हमारे यहाँ चाय पर कष्ट करना होगा।

अनुपम : अवश्य साहब। नेकी और पूछ-पूछ।

* * *

(लता और माया)

लता : तुम लोग कितने गहरे उतर गये हो ?

माया : तुम लोग ! कौन लोग ?

लता : अब बनो नहीं।

माया : सच मैं बिल्कुल नहीं समझी, तुम्हारा इशारा किस ओर है ?

लता : अनुपम से तुम्हारा विवाह कब हो रहा है ?

माया : (**उदास होकर**) कम से कम इस जन्म में तो नहीं।

लता : तुम्हारी सब सहेलियाँ यही समझे बैठी हैं ।

माया : अब लता तुझे मैं क्या बताऊँ। विवाह की बात तो दूर, घनिष्ठता भी सम्भव नहीं ।

लता : इसे कहते हैं पहेली बुझाना ।

माया : इस भेद को मैं खोल नहीं सकती लता । और जो चाहे तू पूछ, यह न पूछ ।

लता : मैं तो इसी बात का जानकर आज जाऊँगी, या फिर कह तू तुझे अपनी सहेली नहीं मानती ।

माया : बात ऐसी है कि मेरे मुँह से निकलनी नहीं चाहिए ।

लता : तब कह कि तू मुझे प्यार नहीं करती ।

माया : यह तो मेरी जान आफ़त में डाल दी तूने ।

लता : बता ।

माया : एक लड़की मेरी दुश्मन हो गई है ।

लता : कौन है वह ?

माया : तू चौंकेगी तो नहीं ?

लता : नहीं ।

माया : मेरी अपनी बहिन है ।

लता : साधना ?

माया : हाँ ।

लता : नहीं तू हँसी कर रही है ।

माया : नहीं लता, जब तक साधना को अनुपम ने नहीं देखा था, तब तक मुझे लगता था कि मैं अकेली लड़की हूँ जिसके सम्बन्ध में वे चिंतन करते हैं, परन्तु जब से साधना आई है, तब से लगता है, मेरे प्रति उनका आकर्षण धीरे-धीरे कम हो रहा ।

लता : पर मैंने तो जब देखा, तय यही पाया कि अनुपम और साधना एक दूसरे से झगड़ते रहते हैं । एक कहता है दक्खिन तो दूसरा कहता है उत्तर । नहीं-नहीं, तेरा यह अनुमान ग़लत है ।

माया : इसीलिए तो मेरा सन्देह और भी दृढ़ हो गया है।

लता : तू आदमी के हृदय को ठीक से पहचानती है ?

माया : तू जानती है, प्रेम के सम्बन्ध में नारी की दृष्टि को धोखा नहीं दिया जा सकता।

लता : पर तुझे विश्वास हैं, अनुपम तुझे प्रेम करता है ?

माया : आर्कषित तो अवश्य थे। मेरा विश्वास था, विवाह के उपरान्त मैं उन्हें ठीक कर लेती।

लता : (**दृढ़ता से**) तू मेरे ऊपर विश्वास कर सकती है ?

माया : हाँ।

लता : तो साधना को मैं तेरे रास्ते से हटा दूँगी।

माया : मैं जीवन भर तेरी आभारी रहूँगी, लता। लेकिन देख, साधना को इस बात का पता न चले। उसको इसकी गन्ध भी मिल गई तो उसके हृदय को बड़ा आघात लगेगा।

लता : तू घबरा मत। मेरे दाहिने हाथ के काम को मेरा बायाँ हाथ भी नहीं जानता।

(**लता और अनुपम**)

लता : इन लोगों को आप कितने दिनों से जानते हैं।

अनुपम : माया को तो बहुत दिनों से जानता हूँ। हाँ, साधना से परिचय नया-नया है। अरे, उसी दिन तो उनसे बातचीत हुई, जिस दिन आपको पहली बार देखा। क्यों क्या बात है ?

लता : कुछ नहीं, वैसे ही।

अनुपम : मेरे सम्बन्ध में कोई बात उठी ?

लता : जब चार आदमी एक जगह बैठते हैं तो बात तो किसी न किसी के सम्बन्ध में उठती ही है; पर अपने सम्बन्ध में सब समय जानना ठीक नहीं। लोग कहते हैं, किसी से अपनी प्रशंसा नहीं सुननी चाहिए। मैं कहती हूँ, सुखी रहना है तो किसी से अपनी बुराई नहीं सुननी चाहिए।

अनुपम : आप विश्वास रखिए, मुझे अपनी बुराई सुनने से बिल्कुल दुःख न होगा। कितने दुःख की बात है कि आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं।

लता : लेकिन आप इतना हठ क्यों कर रहे हैं? हो सकता है मुझे भुलावे में डालने के लिए ही उन्होंने वैसा कहा हो।

अनुपम : कुछ भी हो, अब तो आपको बताना ही होगा। नारी अपना हृदय जैसा नारी के सामने खोलती है, वैसा पुरुष के सामने नहीं। और फिर आप तो उनकी सहेली हैं।

लता : (**नटखटपन से**) अच्छा, यदि मैं न बताऊँ!

अनुपम : तो कल से मेरा यहाँ आना बन्द।

लता : (**हँसकर**) अच्छा, इतनी बड़ी सज़ा तो न दीजिए। एक बात बतलाइए....वे लोग आपको कभी बुलाते भी हैं, या आप अपनी ओर से ही उनके यहाँ जाते है?

अनुपम : मेल होने पर यह तो आवश्यक नहीं कि जब कोई बुलाये उसी समय हम जायँ।

लता : कुछ भी हो, लेकिन हर तीसरे दिन आपके वहाँ जाने से उसका आशय कुछ-का-कुछ लगाया जा सकता है। लगाया जा सकता है न?

अनुपम : (**सोचकर**) यह तो आप ठीक कहती हैं।

लता : और आपकी पीठ पीछे लोग आपकी भावना की हँसी उड़ायें, यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

अनुपम : लेकिन अगर मेरा जाना इन्हें बुरा लगता रहा है तो वे रोक भी सकती थीं?

लता : यह तो आज की सभ्यता की सामान्य माँग है कि हमारे भाव का पता किसी को न चले। जिस समय किसी को हृदय से हम घृणा भी करते हैं, उस समय भी हमें उससे हँसकर बातें करनी पड़ती हैं। जब आप जायेंगे, तो यह तो हो नहीं सकता कि कोई आपको अपने घर से निकाल दे और जब आप बैठ ही जायेंगे तो कुछ न कुछ बात भी करनी ही पड़ेगी।

अनुपम : तो उन्हें मुझसे आज तक कुछ नहीं मिला ?

लता : (हँसकर) मिला क्यों नहीं ? आपके जाने से उनका मनोरंजन होता है। यह क्या छोटी प्राप्ति है ? एक बात मैं आपसे कहूँ, अगर आप बुरा न मानें।

अनुपम : कहिए, मैं आपकी किसी बात का बुरा नहीं मानता।

लता : आपने जो छूटते ही उस दिन साधना से मज़ाक की, वह ठीक बात नहीं थी। इससे आप जिसे प्रसन्न करना चाहते थे, वह तो प्रसन्न हुआ ही नहीं, एक और प्राणी अप्रसन्न हो गया।

अनुपम : आप का तात्पर्य माया से है ?

लता : आपने ठीक समझा।

अनुपम : लेकिन मेरे मन में तो कोई बात थी नहीं।

लता : मन को कोई नहीं देखता, सब व्यवहार को देखते हैं। और आप क्षमा कर सकें तो मैं कहूँगी स्त्री-मनोविज्ञान के सम्बन्ध में आप कुछ नहीं समझते।

अनुपम : मुझे अपने व्यवहार पर खेद है।

लता : मैं आपको एक बात समझाना चाहती थी, पर आप मुझसे बड़े हैं, इसलिए संकोच लगता है।

अनुपम : आप कहिए भी। इतनी सहानुभूति के साथ आज तक किसी ने मुझसे बात नहीं की।

लता : देखिए, लज्जित न कीजिए। पर क्योंकि मैं आपका हित चाहती हूँ; इसलिए कहती हूँ। स्त्रियों से व्यवहार करते समय जिस बात का पुरुष को सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए, वह है शिष्टता। नारी सबको क्षमा कर सकती है, पर अशिष्ट व्यक्ति को वह भूल कर भी क्षमा नहीं करती। दूसरी बात जो मैं आपको समझाना चाहती हूँ वह यह कि व्यक्ति को अपने भाव पर अधिकार है, अभिव्यक्ति पर नहीं, अर्थात् आप किसी के प्रति मन में कोई भाव रख सकते हैं, लेकिन उस भाव को व्यक्त करने के लिए स्वतन्त्र नहीं हैं।

अनुपम : तब तो पुरुष नारी से अपने मन की बात कभी कह नहीं पायेगा।
लता : नहीं भाव को मन में रखने की भी एक सीमा है।
अनुपम : क्या है वह सीमा ?
लता : जब तक दूसरी ओर से कोई संकेत न मिले तब तक।
अनुपम : तब प्रेम के क्षेत्र में पुरुष का कोई महत्त्व नहीं ?
लता : क्षमा चाहती हूँ, नहीं। स्त्री और पुरुष के प्रेम में स्त्री की इच्छा ही सब कुछ है। जब तक वह न चाहे, तब तक कुछ नहीं हो सकता। (शांत होकर) संभवतः मैं आवश्यकता से अधिक कह गई। मुझे इतना नहीं बोलना चाहिए था।
अनुपम : नहीं, आज मैंने आपसे बहुत सी नई बातें सीखीं। मैं कृतज्ञ रहूँगा।

× × ×

(लता साधना के पास जाती है)

लता : नमस्ते।
साधना : नमस्ते भई, नमस्ते। मैं तो चौंक गई।
लता : किसी के ध्यान में बैठी थीं ?
साधना : सोच रही थी कोई आये तो दो बातें हों। किसी भी काम में आजकल मन नहीं लगता।
लता : तब यों कहो 'कोई' की प्रतीक्षा थी, हम कोई चीज़ नहीं।
साधना : नहीं, कोई से मतलब कोई विशेष व्यक्ति नहीं लता, बल्कि कोई भी। तू समझती तो है, फिर क्यों तंग करती है ?
लता : अब यों न उड़ो। इस कोई बात का तात्पर्य हम भी समझते हैं, वह कोई और है!
साधना : (हँसकर) कौन भला ?
लता : उसके नाम में चार अक्षर हैं।

(हँसती है)

साधना : (हँस कर) चल दुष्ट !
लता : अच्छा अगर वह नहीं है तो तूने उसी को कैसे समझा ?

साधना : अब कैसे हो तुझसे जान तो छुड़ाऊँ। अच्छा मान ले, वे ही हैं।

लता : मान ले नहीं, कह, हैं।

साधना : हाँ, हाँ, हैं। लेकिन लता मन का सोचा कभी पूरा नहीं होता।

लता : भई, हम तो ऐसी बात सोचते ही नहीं, जो हो न। लेकिन आदमी अनुपम है खूब। कल कला और प्रेम पर मेरी दो घंटे उनसे बातचीत हुई। बातों ही बातों में तेरी चर्चा आ गई।

साधना : मेरी चर्चा तूने क्यों की लता ?

लता : चर्चा ही नहीं, मैंने इतनी प्रशंसा की कि कुछ न पूछ। भाई, मुझसे तो यह होता नहीं कि तेरा नाम आए और मैं चुप बैठ जाऊँ।

साधना : उन्होंने भी कुछ कहा ?

लता : खेद है साधना, उन्होंने तेरे विषय में कोई उत्साह नहीं प्रदर्शित किया। ज्यों ही मैं तेरा नाम लेती थी कि वे प्रसंग ही बदल देते थे।

साधना : (निरुत्साह सी) मैं तो पहले ही कहती थी, तुझे मेरी चर्चा नहीं करनी चाहिए थी।

(क्रोध में) तू सबके सामने मुझे अपमानित कराती फिरती है।

लता : और इससे भी अधिक आश्चर्य मुझे इस बात पर हुआ कि प्रसंग न होने पर भी एक नाम वे बड़े अनुराग के साथ बार-बार ले बैठते थे।

साधना : किसका ?

लता : नहीं भई, मैं नहीं बता सकती।

साधना : तुझे मेरे सर की सौगंध है जो मुझसे छिपाए।

लता : मैं इस सौगंध को मानती ही नहीं।

साधना : तू मुझ मरी का मुँह देखे जो न बताये तो।

लता : तेरे मन में उसके प्रति कोई अंतर तो नहीं पड़ जायगा ?

साधना : नहीं।

लता : मेरे सर पर हाथ रख।

साधना : ले रखती हूँ, बता।

लता : तेरी बहिन है।

साधना : ओह !

* * *

(एक वृद्धा माया को देखने आती है)

वृद्धा : तुम्हारा क्या नाम है बेटी ?

राधाकांत : नाम बताओ बेटी, संकोच नहीं करते।

माया : (सकुचाकर) माया।

वृद्धा : माया। प्यारा नाम है, बहुत प्यारा नाम है। तुमने कुछ पढ़ा-लिखा भी है ?

माया : एफ० ए० पास किया है।

वृद्धा : मिडिल तो पास कर लिया है ?

राधाकांत : एफ० ए० मिडिल से भी आगे होता है जी।

वृद्धा : अच्छी बात है, बहुत अच्छी बात है। हमें कौन सी नौकरी करानी है। बहू के हाथ की चिट्ठी छोटे के पास पहुँच जाय, इतना ही बहुत है।

लाजो : जी, जरूर पहुँच जायगी।

वृद्धा : खाना पकाना, सीना-पिरोना भी कुछ जानती हो ?

राधाकांत : इसकी मा इसे चार साल का ही छोड़कर मर गई थी। घर की देख-भाल अब तो यही करती है।
(रुककर) और हाँ, इसे चित्र बनाने का बड़ा शौक है।

वृद्धा : चित्तर बनाती है ?

राधाकांत : जी हाँ। बेटी अपने नये चित्र तो लाओ !

वृद्धा : राम जी का कोई चित्तर बनाया हो तो दिखाओ ?

माया : जी, राम जी का तो कोई चित्र नहीं है। सीनरी बनाई हैं।

वृद्धा : क्या कहा बिटिया ने ?

राधाकांत : जी कहती है, पहाड़, नदी, झील, जंगल, झरनों के चित्र हैं।

वृद्धा : देवताओं के चित्तर नहीं बनाने आते अभी ?

राधाकांत : जी धीरे-धीरे बनाने लगेगी।

वृद्धा : ठीक बात है, बहुत ठीक बात है। और क्या जानती हो बेटी ?

माया : थोड़ा सा गाना जानती हूँ।

वृद्धा : हरमुनिया बजाती हो ?

माया : जी हारमोनियम को तो आजकल बहुत भद्दा बाजा समझते हैं। मैं सितार बजाती हूँ।

वृद्धा : हमारी मंगला तो हरमुनिया ही बजाती है।

राधाकांत : जी, बाजा कोई बुरा नहीं होता, बजाने वाले पर निर्भर करता है। हारमोनियम बजाने वाला अच्छा हो, तो वही बहुत अच्छा बाजा है।

वृद्धा : अच्छा बेटी, एक ग्लास पानी हमें पिलाओगी ?

माया : लाजो।

वृद्धा : नहीं, हम तो अपनी बेटी के हाथ से ही पियेंगे।

लाजो : (**हँसती है**) राम भला करें, चला फिरा के देख रही हैं, कहीं लूली-लँगड़ी न हों.......जैसे गाय बैल खरीदते हैं तो उसके चारों कोने परखते हैं।

वृद्धा : (**क्रुद्ध होकर**) यह कौन है ?

राधाकांत : जी, यह मेरी नौकरानी है। इसे बिल्कुल बुद्धि नहीं है कि क्या कहना चाहिए, क्या न कहना चाहिए ?

(**साधना प्रवेश करती है**)

साधना : नमस्ते माता जी !

वृद्धा : माता जी ! कैसी मीठी बोली है ! तू कौन है बिटिया ?

राधाकांत : यह मेरी छोटी लड़की है। साधना नाम है !

वृद्धा : आ, मेरे पास बैठ। कैसी शीलवती कन्या है और कैसा रूप है जैसे उजली धूप। छोटे के साथ इसकी जोड़ी खूब खिलेगी, जैसे सूरज और चंदा की।

(राधाकांत से) हमें तो अपनी इसी बिटिया को दे दो राधाकांत जी।

राधाकांत : वैसे तो दोनों लड़कियाँ ही आप की हैं, पर आप जानती हैं, विवाह तो पहले बड़ी का ही होगा।

लाजो : बाबू जी ने क्या बात कही, राम भला करें।

वृद्धा : इस नौकरानी को मेरी आँखों के आगे से हटाओ, राधाकांत जी।

लाजो : लो, मैं खुद जा रही हूँ, राम भला करें।

* * *

(अनुपम राधाकांत के यहाँ जाता है)

अनुपम : नमस्ते साधना जी।

साधना : आइये, अनुपम बाबू, बैठिए। जीजी को अभी बुलाती हूँ।

अनुपम : उनसे नहीं, मैं आप से बातें करने आया हूँ।

साधना : तब मुझसे ही बातें कीजिए। कहिए क्या बातें करनी हैं?

अनुपम : तुम क्या साधना मुझसे सदैव लड़ती ही रहोगी? कभी मेरी बात नहीं सुनोगी?

साधना : सुन तो रही हूँ। कहिए न क्या बात है?

अनुपम : मैंने सुना है, आजकल तुम्हारी बहिन को देखने वाले बहुत लोग आ रहे हैं। क्या निश्चय हुआ?

साधना : निश्चय यह हुआ कि बहिन का विवाह संसार में किसी से हो, आप से न होगा। समझा आपने?

अनुपम : मेरा आशय यह बिल्कुल न था साधना और न मैंने स्वप्न में भी इस बात की कल्पना की है। मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ जीवन में किसी के भी सपने पूरे नहीं होते।

(लाजो का प्रवेश)

लाजो : राम भला करें, यहाँ तो अनुपम बाबू हैं। बाबू आप दिन में भी सपने देखते हैं!

अनुपम : कैसी हो लजवन्ती?

लाजो : (**स्वर बदलकर**) हाय राम लजवन्ती! आपकी दया से भली-चंगी हूँ बाबू। आज तो आप बहुत दिनों में दिखाई दिए।

अनुपम : हाँ, लाजो, काम ही कुछ ऐसा लग गया था कि इधर आ न सका।

लाजो : (हँसकर) लता बीबी जी ने छुट्टी न दी होगी।

अनुपम : (घबड़ाकर) नहीं लाजो, वहाँ तो मैं बहुत कम जाता हूँ।
लाजो : राम भला करें, यही तो। अच्छा, मैं चलूँ, बाबू।

(माया पास आती है)

माया : मैं तुझे आवाज़ देते-देते थक गयो लाजो। तू आँखों के आगे से एकदम ग़ायब हो जाती है और फिर तेरा पता नहीं चलता। चल, बाबू जी से पूछ क्या काम है ?
(अनुपम से) ओह ! आप हैं ? कितनी देर से बैठे हैं।
अनुपम : अभी आया हूँ।
माया : आने पर सूचना तो दे दिया कीजिए। चार दिन में ही हम इतने पराये हो गये।
अनुपम : नहीं, नहीं, बात यह हुई कि.......
माया : रहने भी दीजिए।

* * *

(अनुपम और साधना)

अनुपम : तुम्हारे हाथ में यह क्या है, साधना ?
साधना : पूजा के फूल हैं।
अनुपम : (हँसकर) इन्हें ऐसे ही चढ़ा दोगी ?
साधना : क्यों, ऐसे ही चढ़ाने में क्या दोष है ?
अनुपम : इनमें धूल जो लगी है।
साधना : मेरे पास जैसा जो है, वही तो चढ़ाऊँगी।
अनुपम : (गंभीर होकर) तुम्हारी पूजा को देर न हो रही हो तो आज मैं फिर कुछ कहना चाहता हूँ।
साधना : मेरी पूजा किसी समय भी हो सकती है। आप कहिए।
अनुपम : तुम जो बात फूलों के संबंध में मानती हो, वह मन के सम्बन्ध में नहीं मानतीं ?
साधना : मानती हूँ।
अनुपम : देखो साधना, जीवन में जितनी दुर्घटनाएँ होती हैं, उनका एक ही

कारण मेरी समझ में आता है और वह यह कि एक प्राणी दूसरे प्राणी से अपने हृदय की बात खुलकर नहीं कहता। विशेष रूप से बात जिससे नहीं छिपानी चाहिए, उसी से छिपाता है। ऐसा क्यों होता है मैं नहीं जानता। यदि दो प्राणी जो एक दूसरे के लिए भाव का अनुभव करते हैं, आपस में दुराव न रखें तो जीवन कभी दुःखान्त न हो। पर भाव को वे कंजूस की निधि की भाँति इतनी गहराई में छिपाकर रखते हैं कि सामान्य दृष्टि को वहाँ पहुँच ही नहीं। भाव का पता न चलता हो, ऐसी बात नहीं। चलता है; पर उस समय, जब कुछ किया नहीं जा सकता।

साधना : इतना तो आप मानेंगे कि भाव व्यक्त करने का एक समय होता है और कामना की सिद्धि का भी।

अनुपम : कैसे ?

साधना : जैसे फूल खिलने का एक समय होता है और फलने का भी। प्रतीक्षा की आवश्यकता है।

अनुपम : लेकिन विश्वास हो तो प्रतीक्षा भी की जा सकती है।

साधना : तब बताइए न मुझसे आप क्या चाहते हैं ?

अनुपम : इतना ही कि मेरे ऊपर विश्वास करो।

साधना : (हँसकर) विश्वास न करती होती तो आप से एकान्त में इस तरह बातें करती ?

अनुपम : तब कहो कि विश्वास करती हूँ।

साधना : कह तो दिया और कैसे कहते हैं।

अनुपम : नहीं, तुम्हारे मुँह से मैं स्पष्ट सुनना चाहता हूँ।

साधना : तुम्हारे ऊपर विश्वास करती हूँ....बस !

अनुपम : इसके आगे कुछ नहीं ?

साधना : (हँसकर) इसके आगे और क्या होता है ? जो आप कहलाते जा रहे हैं, वह मैं कह रही हूँ।

अनुपम : देखो साधना, जीवन में सदैव भाव की ही विजय नहीं होती, छल

की भी होती है। यह संसार ऐसा है जिसमें किसी की निधि को कोई भी उठाकर ले जा सकता है।

साधना : अच्छा, अब आप जाइए। मुझे देर हो रही है।

अनुपम : साधना।

साधना : (बिगड़कर) कुछ कहोगे भी कि 'साधना' 'साधना'।

अनुपम : कह तो दूँ, पर तुम्हारे अप्रसन्न होने का भय है।

साधना : (हँसकर) नहीं, मैं अप्रसन्न नहीं होने की।

अनुपम : मैं सदैव एक ऐसे प्राणी की खोज में रहा जो मेरे जीवन की उपयुक्त संगिनी हो सके। पहले ही दिन जब मैंने तुम्हें देखा तो लगा, जिसकी खोज में मैं अब तक भटकता रहा, तुम वही हो। (रुककर) तुम अप्रसन्न हो गईं न ?

साधना : नहीं, सुनकर बहुत अच्छा लगा।

अनुपम : तब ?

साधना : आपका पथ जितना सरल है, मेरा नहीं। आपके सामने केवल प्रेम है, मेरे सामने प्रेम और कर्तव्य दोनों।

अनुपम : इससे मैं क्या समझूं ?

साधना : आप जितने स्वतंत्र हैं, मैं उतनी नहीं।

अनुपम : क्या तुम खुलकर कुछ नहीं कह सकतीं ?

साधना : मुझे दुःख है....नहीं।

अनुपम : कारण ?

साधना : अनिष्ट होने की आशंका है।

अनुपम : किस का अनिष्ट ?

साधना : किसी का नहीं। मैं हाथ जोड़ती हूँ, आप जाइए।

अनुपम : मेरे कारण यदि किसी अनिष्ट होने की आशंका है तो मैं हट जाऊँगा! (आवेश में) तुम्हारे जीवन से बहुत दूर चला जाऊँगा इतनी दूर जहाँ तुम मेरी छाया भी न पा सको। लेकिन जाने से पूर्व मैं तुम्हारे मुँह से अंतिम बात सुनना चाहता हूँ।

साधना : (गंभीरता से) मैं कहीं रहूँ और कुछ भी करूँ, पर जीवन में तुम्हें कभी भुला न सकूँगी। (जाती है)

अनुपम : (पुकारकर) साधना, मेरी बात तो सुनो, मेरी बात तो सुनो साधना।

साधना : (दूर से) जाइए और अब कभी मत आइए।

* * *

(राधाकांत बैठे हैं। लाजो प्रवेश करती है)

लाजो : बाबू जी आपकी चिट्ठी है।

राधाकांत : ला।

(पत्र खोलकर पढ़ते है। बीच बीच में 'हाँ','हूँ' कहते जाते हैं)

लखनऊ

आदरणीय पिता जी,

नमस्ते।

आप मेरे पत्र की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। पत्र आज से तीन दिन पहले ही मुझे लिख देना चाहिए था, परन्तु मैं यह निश्चय नहीं कर पाया कि आपको क्या लिखूं। क्या लिखूं से कठिन समस्या थी यह कि कैसे लिखूं ?

आपके सत्कार को कभी भुलाया नहीं जा सकता। विशेष रूप से आपके घर वालों के सम्पर्क में आकर जो सुख मुझे मिला, उसे मैं बहुत दिनों तक स्मरण रखूंगा।

माया जी को मैंने आशा से अधिक गुणवती पाया। सच यह है, मैं उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ। मुझे विश्वास है, यदि इसकी चर्चा मैंने अपनी माता जी से की होती; तो वे उन्हें अपने घर की बहू बनाने में प्रसन्नता और गर्व का अनुभव करतीं।

आपको इस बात पर थोड़ा सा आश्चर्य होगा कि यह चर्चा अब तक मैंने की क्यों नहीं ? उसी भेद को खोलने के लिए यह पत्र मैं आपको लिख रहा हूँ। विश्वास है, मेरी लेखनी से यदि कुछ अनुचित निकल जाय तो आप क्षमा करेंगे।

माया जी के साथ ही उस दिन उनकी छोटी बहिन साधना जी से मेरी भेंट हुई। चलते-चलते वे मुझसे मज़ाक भी कर गईं। और जो सम्बन्ध वे सोच बैठी थीं उसके अनुसार उनका मज़ाक करना उचित ही था। पर सच बात यह है कि लौटने के बाद से उन्हें अभी तक मैं भुला नहीं पाया हूँ। मेरी विनम्र प्रार्थना यही है कि यदि आप उनके सम्बन्ध में मेरा विचार कर सकें तो मैं अपने को सौभाग्यशाली समझूँगा।

आपका

नगेन्द्र

पुनश्च :—यदि माया जी के पहिले विवाह करने का प्रश्न हो तो मैं कुछ दिन प्रतीक्षा कर सकूँगा।

राधाकांत : (**साँस फेंककर**) उफ़। यह साधना भी मेरे लिए एक समस्या बन गई है। इस तरह तो माया का विवाह कभी हो ही नहीं सकता। (**पुकार कर**) लाजो।

लाजो : मैं पास ही खड़ी हूँ सरकार।

कांत : (**क्रोध में**) साधना को भेजो !

लाजो : जी, बहुत अच्छा, सरकार।

कांत : नहीं, लौटो।

लाजो : जी बहुत अच्छा।

कांत : (**झुँझलाहट में**) अच्छा, माया को भेजो।

लाजो : जी, बहुत अच्छा सरकार।

कांत : नहीं, लौटो।

लाजो : जी, बहुत अच्छा।

कांत : अच्छा, उसकी मा को भेजो।

लाजो : बहू जी तो सरकार, बहुत दिन हुए स्वर्ग सिधार गईं।

कांत : ऐं। मैं पागल हो जाऊँगा, लाजो।

लाजो : सरकार की तबियत ठीक नहीं हैं। पानी लाऊँ ?

कांत : तुमने यह पत्र सुना ? सुना यह पत्र ?

लाजो : जी सरकार, भूल हो गई, माफी चाहती हूँ ।

कांत : नहीं, हम तुमसे नाराज़ नहीं । तुम्हीं बताओ हम क्या करें, लेकिन तुम क्या बताओगी ? अच्छा माया में कोई दोष है ? लेकिन साधना ? वह भी मेरी बेटी है । मेरी दूसरी आँख है । मैं बाप हूँ । उसका गला नहीं घोंट सकता ।

लाजो : उसका बहुत सीधा उपाय है सरकार ।

कांत : (उत्साहित होकर) बताओ, बताओ, तुम्हें इनाम मिलेगा ।

लाजो : क्यों न सरकार छोटी बीबी जी को कुछ दिनों के लिए ननहाल भेज दें ।

कांत : तुमने ठीक कहा । लेकिन माया का सम्बन्ध पक्का हो जाने पर विवाह के समय तो उसे बुलाना ही पड़ेगा ।

लाजो : राम भला करें, क्या ज़रूरत है सरकार । राजा दसरथ ने भी तो यही किया था ।

कांत : (सोचकर) अच्छी बात है । तुम जाओ ।

लाजो : मेरा नाम न लीजियेगा सरकार । राम भला करें ।

(माया का विवाह । शहनाई के स्वर)

* * *

(माया और कमल विनोद की हँसी हँस रहे हैं)

माया : (हँसना रोककर) पिता जी, सखियाँ, साधना और वह पालना जैसा सुन्दर घर जिसकी गोद में पलकर मैं इतनी बड़ी हुई……ये सब एक दिन कितने प्यारे थे । उनसे बिछुड़ने की कल्पना करते ही लगता था जैसे मेरे प्राण ही निकल जायँगे । और तुम ! तुम अपरिचित । तुम्हारा नाम तक न सुना था । उन्हें मैं धीरे-धीरे भूलती जा रही हूँ और आज तुम सबसे प्यारे हो उठे हो ।

कमलनयन मैं तो समझता हूँ लड़कियों को पिता का घर छोड़ने में कुछ भी दुःख नहीं होता । झूठ-मूठ को रोती हैं ।

माया : ऐसी बात नहीं है। उस समय तो सचमुच कलेजा बहुत टूटता है, रुलाई आती है।

कमल : रुलाई आती है तो थोड़ी देर में फिर हँसने कैसे लगती हो ?

माया : लड़कियों के मन में बचपन से ही जो यह भावना भरी जाती है कि पिता का घर तुम्हारा घर नहीं, तुम्हारा घर तो कोई दूसरा है; यही सोचकर उन्हें संतोष हो जाता होगा।

कमल : (हँसकर) और फिर लड़कियों के लिए पति का संबंध सबसे प्रिय सम्बन्ध भी तो है।

माया : कैसे जी ?

कमल : अरे, तुम लोग अपने-अपने पति को 'प्रियतम' कहती हो कि नहीं ?

माया : दुष्ट कहीं के !

कमल : अच्छा, एक बात का ठीक-ठीक उत्तर दो तो मैं पूछूँ ?

माया : तुम समझते हो मैं तुमसे झूठ भी बोल सकती हूँ ?

कमल : संसार में तुम सबसे अधिक प्यार किसे करती हो ?

माया : तुम्हें।

कमल : झूँठी बात है। यह तो तुमने वही बात कही जो हर लड़की कहती है, एकदम रटी हुई।

माया : तुम्हें इसमें कोई संदेह है ?

कमल : संदेह हो या नहीं पर मैं यह मान नहीं सकता कि एक सुन्दर और शिक्षित लड़की के जीवन में उसके पति को छोड़ कर और व्यक्ति नहीं आते।

माया : तब तुम रास्ते में मिलने वालों और जीवन भर साथ चलने वालों में कोई अंतर ही नहीं करते। सड़क के साथी और जीवन-साथी दोनों एक ही नहीं हो जाते, महाशय !

कमल : पथ में मिलने वाले भी तो कभी-कभी बहुत प्रिय हो उठते हैं।

माया : हाँ, हो उठते हैं।

कमल : लगता है अतीत की कोई मधुर घटना तुम्हें याद आ रही है।

माया : (साँस फेंककर) हाँ।

कमल : सुनाओ !

माया : संन्ध्या-काल था, नदी का सूनातट, मैं बैठी दीप-दान कर रही थी····

कमल : संध्या-काल, सूना तट, दीप-दान !

माया : हाँ, दीप जलाकर धारा में प्रवाहित करती कि पवन का झोंका उसे आकर बुझा देता था।

कमल : पवन का झोंका !

माया : मैंने कितने ही दीप जलाये, पर कोई आगे न बढ़ सका। मैं निराश हो गई।

कमल : तब ?

माया : तब मैंने देखा पीछे से किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखकर कहा : निराश न हो !

कमल : कितनी अवस्था थी उसकी ?

माया : मुझसे थोड़ी अधिक होगी।

कमल : ऐं, फिर क्या हुआ ?

माया : मैं प्रसन्नता से नाच उठी और पागल-सी उसके साथ चल दी।

कमल : साथ चल दीं ! फिर ?

माया : पास ही में एक शीतल कुंज था। वहाँ एक शिला पर हम दोनों बैठ गए।

कमल : दूर-दूर कि पास-पास ?

माया : बिल्कुल सटकर।

कमल : फिर ?

माया : फिर उन्होंने अपनी कोमल उँगलियों से मेरी ठोढ़ी को छुआ।

कमल : फिर ?

माया : फिर मेरी आँख खुल गई।

कमल : तो तुम मुझे सपना सुना रही थीं !

माया : (झुँझलाकर) नहीं, सच सुना रही थी। जिसके साथ जीवन काटना है उससे ऐसे प्रश्न कोई करता है ? यदि यही प्रश्न मैं

तुमसे कहूँ तो तुम उत्तर दे सकोगे ?

कमल : (हँसकर) कुछ भी हो, तुम हो बहुत समझदार !

माया : और तुम कितने समझदार हो ?

कमल : (गंभीर होकर) मैं बहुत सौभाग्यशाली हूँ, पर इस सुख के पल में एक चिन्ताजनक समाचार तुम्हें देना है माया, और वह यह कि तुम्हारे पिता की तबियत बहुत ख़राब है। हमें रात ही की गाड़ी से चल देना है। यह साधना का पत्र है ! भूल से मैंने इसे खोल लिया। लो।

माया : तो क्या हुआ ? मैं तो नहीं समझती मेरा ऐसा कुछ भी है जो तुमसे छिपा हुआ हो।

कमल : साधना तुम्हारी छोटी बहिन है न ?

माया : हाँ।

कमल : विवाह में तो मैंने उसे नहीं देखा।

माया : विवाह से पहले ही वह ननिहाल चली गई थी और अचानक बीमार पड़ जाने के कारण आ न सकी बेचारी।

कमल : कोई बात नहीं। परन्तु तुमने भी कभी उसकी चर्चा नहीं की !

माया : मेरी कल्पना में तो हर समय तुम ही घूमते रहते हो। मुझे किसी और की चर्चा करने का अवकाश ही कहाँ मिलता है, बताओ तो ?

कमल : कोई बात नहीं।

* * *

(माया पिता के घर आती है)

माया : पिता जी की कैसी तबियत है, साधना ?

साधना : (रोती हुई) पिता जी तो गये दीदी।

(देर तक रोती है)

माया : (सान्त्वना के स्वर में) रो मत ! रोने से तो काम न चलेगा, साधना। जब तक मैं हूँ, तुझे किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। और अब तो मैं अकेली नहीं हूँ। सामने देख,

ये तेरे जीजा जी खड़े हैं। इन्हें तूने पहिले कभी नहीं देखा! नमस्ते कर इन्हें!

साधना : नमस्ते, जीजा जी!

कमल : नमस्ते। रोते-रोते आपकी आँखें लाल पड़ गई हैं। धीरज से काम लीजिए। रोने से जाने वाला तो लौटकर आ नहीं सकता!

माया : यह क्या लाजो खड़ी है कोने में? अरी यहाँ आ!

लाजो : आई, बीबी जी!

(रोती है)

साधना : लाजो न होती तो अकेली मैं इस घर में कैसे रहती दीदी?

लाजो : बाबू जी कितने अच्छे आदमी थे, बीबी जी। आँख मींचते समय कहने लगे: माया तो है नहीं लाजो। साधना को अब तेरे हाथ सौंपता हूँ। देख, इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

माया : हमने तो तुझे कभी बाहर का नहीं समझा लाजो। लेकिन अब मैं आ गई हूँ। कोई चिन्ता की बात नहीं।

कमल : और हमने यह निश्चय किया है कि अब हम इसी शहर में रहेंगे।

* * *

(कमल साधना से बातें कर रहा है)

कमल : यह क्या किसी को पत्र लिख रही हो साधना?

साधना : नहीं जीजा जी, गद्य-गीत लिख रही हूँ।

कमल : अच्छा तो सुनाओ।

साधना : मैं जो कुछ भी लिखती हूँ अपने लिए लिखती हूँ जीजा जी, दूसरे को सुनाने के लिए नहीं लिखती।

कमल : तुम समझती हो, हम कविता बिल्कुल नहीं समझते! हमारे हृदय नहीं है?

साधना : (हँसती हुई) सो बात नहीं, जीजा जी! लेकिन इस गद्य-गीत से आपका कोई सम्बन्ध नहीं!

कमल : किसी और का है?

साधना : (भोलेपन से) जी, जीजा जी। आपको बुरा तो नहीं लगा ?

कमल : हम बहुत प्रसन्न हुए। तुममें कम से कम स्पष्ट बात कहने का साहस तो है।

साधना : बात तो मैंने स्पष्ट नहीं कही जीजा जी, और आपको बुरा भी लगा; पर क्या किया जाय, संसार में सबको प्रसन्न नहीं किया जा सकता।

कमल : मैंने तो सुना था कलाकार किसी का दिल नहीं दुखाते ?

साधना : दिल दुखा हो, तो सुनाए देती हूँ, जीजा जी। लेकिन फिर तो कभी आग्रह नहीं करेंगे ?

कमल : सुनाओ तो। फिर की बात फिर देखी जायगी।

साधना : अच्छा तो सुनिए :

प्रभात में ओस भरी कलियाँ तोड़कर मैं लाई।
तुमने आने का आश्वासन दिया था न ?
मैंने सोचा, इन्हें मैं तुम्हारे चरणों पर चढ़ा दूँगी।
पर मेरी प्रतीक्षा सूनी रही।
संध्या के अंधकार में मैंने देखा,—आज मेरी पूजा के फूल मुरझा गए हैं।
मैंने ओस भरी कलियाँ तोड़ी थीं न ?

कमल : (ताली बजाकर) ओस भरी कलियाँ ! वाह, वाह !

(माया का प्रवेश)

माया : साधना, कुछ घर का काम भी किया कर। जीवन यों ही ठठोली में तो बीत नहीं जायगा !

साधना : जीजी मैं तो....

माया : नहीं मैं कुछ कहती नहीं....लेकिन....

साधना : जीजी...

माया : बात न बना। खाने का समय हो रहा है। चल कुछ काम कर।

* * *

(साधना बैठी लिख रही है। धीरे-धीरे पढ़ती है)

साधना : रात मैंने सपना देखा है।
पतझर काल है। पत्तियाँ झर-झर कर इधर-उधर गिर रही हैं। एक पेड़ के नीचे तुम उदास बैठे हो। सामने जल का एक क्षीण स्रोत बह रहा है। एक पत्ती को उठाकर तुमने उसमें डाल दिया है और उदास मुद्रा से तुम उसका धीरे-धीरे बहना देख रहे हो।
रात मैंने सपना देखा है।

कमल : (**प्रवेश करके**) रात मैंने भी एक सपना देखा है।

साधना : ओह, जीजा जी हैं!

कमल : तुम वास्तव में कलाकार हो साधना।

साधना : (**हँसकर**) इसका पता आप को कैसे चला जीजा जी ?

कमल : ये तुम्हारी उँगलियाँ....कैसी लम्बी, पतली और सुन्दर हैं....बिल्कुल कलाकारों जैसी।

साधना : (**अप्रसन्न होकर**) यह बहुत बुरी बात है, जीजा जी!

कमल : (**हँसकर**) क्या ?

साधना : यही कि आदमी कला को देखते-देखते कलाकार को देखने लगता है। अब मैं आपसे कभी न बोलूँगी।
(**कमल देर तक जोर से दुष्टता की हँसी हँसता है**)

* * *

(**संध्या ढल चुकी है। साधना बैठी है। कमल आता है**)

कमल : रात तुमने तो कमाल कर दिया साधना!

साधना : कैसा कमाल ?

कमल : अरे, सितार बजाने में!

साधना : सितार तो मैं सोने से पहले नित्य ही बजाती हूँ, जीजा जी।

कमल : मैं रात की बात कर रहा हूँ, जब मैं ऊपर छत पर सो रहा था और तुम नीचे सीढ़ियों पर बैठी राग छेड़ रही थीं।

साधना : ओह!

कमल : और जब अंधकार को चीर कर स्वर का आनंद बिखरा पड़ता था....

साधना : यह तो आप ने मेरा वाक्य चुरा लिया जीजा जी....

कमल : अरे, तो क्या हुआ ! यह चोरी तो लगी ही रहती है। कभी मैं तुम्हारी कोई चीज़ चुराता हूँ, कभी तुम मेरी।

साधना : फिर क्या हुआ, जीजा जी ?

कमल : तुमने इतने अच्छे स्वर लगाये, इतने मीठे स्वर लगाए कि मैं सो गया।

साधना : मुझे बिल्कुल स्मरण नहीं, जीजा जी।

कमल : और प्रभात काल में जैसे ही तुमने राग छेड़ा कि धीरे-धीरे मेरी पलकें खुलीं। मैं सच कहता हूँ, साधना ! सोने और जागने के बीच का जो अन्तर था, वह मुझे मालूम ही नहीं हुआ।

साधना : (गंभीर होकर) प्रभात काल में सूर्योदय के पूर्व ही में अभ्यास प्रारम्भ कर देती हूँ, जीजा जी।

कमल : लेकिन इससे मैं किस भ्रम में पड़ गया साधना, जानती हो ?

साधना : भ्रम को जानकर क्या होगा, जीजा जी ?

कमल : मैंने समझा इतना मधुर तुम मेरे लिए बजाती हो....मेरे लिए।

साधना : सचमुच, यह आपका भ्रम था जीजा जी। मैं केवल अपने मन की प्रसन्नता के लिए बजाती हूँ।

कमल : और जानती हो मेरी क्या इच्छा हुई ?

साधना : मुझे जानने की इच्छा नहीं। कोई और बात कीजिए।

कमल : नहीं, सुनो साधना, इच्छा हुई कि मेरी पत्नी ऐसी होती जो संगीत से मुझे सुलाती और संगीत से जगाती।

साधना : तो क्यों नहीं जीजी को और थोड़ा सा अभ्यास करा देते ?

कमल : (झुंझलाकर) जीजी, जीजी, परेशान हो गया हूँ मैं यह सुनते-सुनते।

साधना : फिर भी आपको अपनी वाणी पर थोड़ा संयम तो रखना ही चाहिए।

कमल : (उसी स्वर में) संयम से मैं घबरा उठा हूँ और आज मेरे मन का उमड़ता भाव संयम का बाँध तोड़कर बहना चाहता है।

साधना : (हँस कर) तब तो बड़ी भयंकर स्थिति खड़ी होगी, जीजा जी।

कमल : (**आवेश में**) मेरे साथ धोखा किया गया है।
साधना : (**घबरा कर**) किसने धोखा किया है आपके साथ ?
कमल : तुम्हारे पिता ने।
साधना : मेरे पिता ने ? कैसे ?
कमल : ऐसे कि जब मैं तुम्हारी बड़ी बहिन को देखने गया था तो तुमको छिपा दिया गया।
साधना : (**हँसती है**) आप भी ख़ूब दिल्लगी करते हैं, जीजा जी। मान लीजिये उस समय मैं आपकी आँखों के सामने होती, तब भी क्या होता ?
कमल : तब मेरा विवाह तुमसे हुआ होता।
साधना : (**ज़ोर से हँसती है**) मेरी इस समय क्या उम्र होगी, जीजा जी ?
कमल : क्यों ?
साधना : ज़रा बताइये तो।
कमल : होगी यही उन्नीस-बीस की।
साधना : तब क्या आप यह समझते हैं कि जिस लड़की ने अपने जीवन के उन्नीस बीस वर्ष पार किए हैं, उसका अतीत कुछ नहीं रहा होगा। वह आज तक आप की प्रतीक्षा में पलकें बिछाए बैठी रहेगी ?
कमल : उसी को तो मैं जानना चाहता हूँ, कौन है वह ? उसे मैं पैरों से कुचल दूँगा।
(**बताता है**) ऐसे। देखो, इस तरह।
साधना : (**दृढ़ता से**) आप उसकी धूल भी नहीं पा सकते, जीजा जी।
कमल : (**स्वर बदल कर**) पिछली बार वह कब आया था ?
साधना : बहुत दिन हुए, जीजा जी।
कलम : (**उत्सुकता से**) फिर क्या हुआ ?
साधना : उसे मैंने अपने द्वार से लौटा दिया।
कमल : तब ठीक है। तुमने समझदारी से काम लिया।
साधना : बिल्कुल ठीक नहीं हुआ। मैं बहुत नासमझ हूँ जीजा जी।
कमल : अच्छा साधना, क्या मैं सुन्दर नहीं हूँ ?

साधना : यह जीजी से पूछिए।

कमल : नहीं, तुम बताओ ?

साधना : सुन्दर तो आप हैं लेकिन........

कमल : लेकिन क्या ?

साधना : (**गंभीरता से**) लेकिन जो व्यक्ति मेरे हृदय में बैठा है, वह आप से कहीं अधिक सुन्दर है। जाइए आप, नहीं तो मैं जीजी को पुकारती हूँ। मुझे आप से भय लगता है।

कमल : तुम्हारी जीजी अपनी सहेली से मिलने गई हैं।

साधना : (**पुकार कर**) लाजो।

कमल : लाजो को मैंने उन्हें बुलाने को भेज दिया है। (**हँसता है**)

साधना : (**टालने के लिए**) आप गाना सुनेंगे, जीजा जी ?

कमल : नहीं।

साधना : आज मैंने एक नया गद्य-गीत लिखा है। उसे लाती हूँ। सुनियेगा।

कमल : नहीं, नहीं। आज मैं तुम्हें अपने हृदय की बात सुनाना चाहता हूँ।

साधना : (**क्रोध में**) मैं देखती हूँ आपका साहस बहुत बढ़ गया है। आज आने दीजिये जीजी को। आदमी का लिहाज़ रखने की भी एक सीमा होती है।

कमल : अपनी बहिन से अगर तुमने कुछ भी कहा तो मैं तुम्हारा जीवन नष्ट कर दूँगा, साधना। पुरुष जितना कोमल होता है, उतना कठोर भी हो सकता है।

(**माया आवाज़ देती है**)

माया : अरे कहाँ हो तुम लोग ?

साधना : आ गई जीजी। अब आप अपनी कठोरता दिखलाइये। जीजी !

माया : (**पास आकर**) क्या बात है ?

कमल : (**दुष्टता से**) तुम माया से कितनी ही सुन्दर और गुणवती हो साधना, लेकिन मैं ऐसी भोली पत्नी को धोखा नहीं दे सकता। (**माया से**) माया तुम आ गईं ?

माया : क्या बात है जी ?

कमल : मैंने ही काफ़ी कह दिया है, अब तुम कुछ न कहो। लेकिन मेरी एक प्रार्थना है। जब तुम जाया करो, तो इसे अपने साथ ले जाया करो।

माया : (**घबराहट में**) बात भी तो सुनूं क्या है ?

कमल : (**बनावटी ढंग से**) मेरे मुँह से वह बात नहीं निकल सकती माया। मैं नहीं चाहता कि तुम दोनों बहनों के हृदय में किसी प्रकार का अंतर पड़े।

(**साधना रोती है**)

लाजो : रोती क्यों हो बीबी जी, साफ़-साफ़ क्यों नहीं बतातीं ?

माया : (**क्रोध में**) बताए तब, जब कुछ हो। मैं जानती हूँ जीवन भर इसने मुझसे दुश्मनी निभाई है। उतने से इसे संतोष नहीं हुआ। अब मेरी सुखी गृहस्थी में आग लगाना चाहती है। उत्तर क्यों नहीं देती ?

साधना : नहीं, मुझे अब किसी से कोई शिकायत नहीं है। जीजा जी ने मुझ से कुछ नहीं कहा। यह सब मेरे ही भाग्य का दोष है। (**रोती है**)

माया : (**क्रोध में**) तू इसी क्षण मेरी आँखों के आगे से दूर हो जा। जा और फिर मुझे अपना काला मुँह कभी मत दिखाना। खड़ी क्या है ढीठ सी। जा।

कमल : नहीं नहीं, इतनी बड़ी सज़ा नहीं देनी चाहिए। अभी नासमझ है, ठीक हो जायगी।

माया : (**क्रोध में**) तुम चुप रहो जी।

(**साधना रोती हुई जाती है**)

* * *

(**माया और कमल बात कर रहे हैं**)

माया : साधना से मैंने भला-बुरा कह तो दिया, पर मेरा हृदय बड़ा अशांत है। कहीं ऐसा न हो वह कहीं सचमुच चल दे.......

कमल : तुम भी क्या पागल हो। इस रात में हाथ को तो हाथ सुझाई

देता नहीं। वह कहाँ जायगी ?

माया : क्यों न उठकर देख लें। यहीं कहीं कोने में बैठी रो रही होगी। मैंने उसे डाट तो दिया, पर जब वह मुड़कर चलने लगी तो उसकी आँखों में ऐसी करुणा थी कि मेरा हृदय दहल गया। अच्छा, तुम रहने दो, मैं ढूंढती हूँ।

कमल : तुम भी क्या विचित्र हो ! अरे, नीचे लाजो के पास सो रही होगी। मरते समय बाबू जी उसे उसके हाथ में सौंप गए थे न ?

(हँसता है)

माया : भगवान करे, ऐसा ही हो। मैं सुबह होते ही उसे सोते से जगाऊँगी और उसके गाल पर एक चपत जमाऊँगी। मुझसे अभिमान करती है।

कमल : और क्या ! अच्छा अब सोओ। अपनी नींद ख़राब करने से क्या फ़ायदा !

माया : पर तुम हो बड़े स्वार्थी ?

कमल : अरे, आओ भी। संसार में कौन स्वार्थी नहीं है।

(कमल हँसता है)

* * *

(आँधी चल रही है। साधना अनुपम का द्वार खटखटाती है)

साधना : यह मैंने क्या किया ? इतनी रात गए मुझे कोई देख ले तो ? तो देख ले। अनुपम आज मुझे यहाँ पाकर चौंकेंगे तो बहुत। अच्छा उस खिड़की से देखूँ ?

(द्वार फिर खटखटाती है)

अनुपम : कोई द्वार खटखटा रहा है।

लता : तुम्हारे भी कान बजते हैं। इतनी रात गए कौन आयगा ? हवा से किवाड़ बज उठे होंगे ?

साधना : (**धीरे से**) हैं, यह तो लता है। तो अनुपम का विवाह हो गया ! कितने प्रसन्न हैं ये दोनों।

अनुपम : देख लो कोई हो न ! पता नहीं किस अज्ञात आशंका से मेरा हृदय आज हिल-हिल उठता है ।

लता : इस आँधी और अँधेरे में कौन आएगा । मैं तो पागल हूँ नहीं जो उठकर जाऊँ । हाँ, एक व्यक्ति हो सकता है ।

अनुपम : कौन ?

लता : तुम्हारी कोई पुरानी प्रेमिका । (हँसती है)

अनुपम : तुम्हारी मज़ाक करने की आदत अभी नहीं छूटी । (हँसता है)

लता : पता नहीं क्यों, बराबर ऐसा लगता रहा है कि मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह अधूरा है, अधूरा ।

अनुपम : तुम्हारा संदेह अभी दूर नहीं हुआ ! इतना ही समझ लो कि जो व्यक्ति जैसे आता है वैसे ही जा भी सकता है लता !

लता : तुम सच कहते हो ?

अनुपम : हाँ लता, व्यक्तियों के प्रेम करने के ढंग अलग-अलग होते हैं । कुछ ऐसे होते हैं जो जीवन में एक बार प्रेम करने के उपरान्त दूसरे व्यक्ति की कल्पना ही नहीं कर सकते, कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें प्यार करने के लिए एक व्यक्ति चाहिए, कोई एक व्यक्ति, विशेष रूप से ऐसा व्यक्ति जो उन्हें जीत ले ।

लता : (गर्व से) तो मैंने तुम्हें जीता ?

अनुपम : (हँसकर) लिखकर दे दूँ ?

लता : नहीं नहीं । केवल मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो ।

अनुपम : लो, सिर पर हाथ रखकर कहता हूँ कि जिस दिन से तुम मेरी हुई, उस दिन से मैंने सब को अपने हृदय से निकाल कर फेंक दिया ।

लता : इससे बड़े सुख की मैं कल्पना नहीं कर सकती । तुम्हें पता है इन दोनों बहिनों से तुम्हें छीनने में मुझे कितना प्रयत्न करना पड़ा है ? और सच पूछो तो साधना तो अब भी मुझे दुश्मन सी खटकती है । तुभ जानते हो इस समय मेरा मन क्या चाहता है ?

अनुपम : क्या चाहता है ?

लता : यही कि तुम्हारी गोद में सिर रखकर मर जाऊँ ।

अनुपम : मरे तुम्हारा दुश्मन ! छिः ऐसी बात मुँह से नहीं निकालते। चलो सोने चलें।

(किवाड़ बन्द होते हैं)

साधना : (लौटते हुए) चल साधना ! अब चल ! आवश्यक नहीं कि जीवन में सबकी कामनाएँ पूरी ही हों।

पर, तुम इतने निठुर कैसे हो गए ? क्या पुरुष का प्रेम ऐसा ही होता है ? ना, तुम्हारा अपराध नहीं। एक दिन मैंने तुम्हें अपने द्वार से लौटा दिया था, आज तुमने मेरे लिए अपने घर का द्वार बन्द कर लिया। चलो बराबर हुए। दुनिया कहती थी मैं सुन्दर हूँ। क्या सुन्दरता का यही परिणाम होता है ? सब कहते थे मैं कलाकार हूँ। क्या कलाकार को अंतिम बिदा इसी प्रकार देते हैं ? इच्छा होती है, एक बार अपने अस्त्रों का प्रयोग करके मैं भी देखूँ। पर किसकी माँग का सेंदुर मलिन करूँ मैं ? सखी की ? नहीं। बहिन की ? नहीं, नहीं। यह साधना से न होगा, न होगा, न होगा। तुम्हें मैं कभी जी भरकर देख तक नहीं पाई। अपनी नींद में ही मेरा अंतिम प्रणाम लेना।

(आँधी। एक वृक्ष के टूटकर गिरने की ध्वनि)

* * *

(चौकीदार का प्रवेश)

चौकीदार : सोने वालो, जागते रहो, जागते रहो।

(ठहर कर) ऐं, सड़क पर यह किसकी लाश पड़ी है ? कोई औरत मालूम होती है। दुखिया थी, मर गई बेचारी। मालूम होता है रोते-रोते अभी मरी है, इसी से इसकी पलकें अब तक भीगी हुई हैं। चलूँ, चौकी पर ख़बर करूँ !

(जाते जाते) सोने वालो, जागते रहो !

चट्टानें

पात्र

अशोक
अमिता
फूल
माधो

चट्टानें

(अमिता अपने नौकर माधो के साथ अशोक के घर के सामने आकर खड़ी होती है। माधो द्वारा खटखटाता है। अशोक की नौकरानी फूल प्रवेश करती है।)

फूल : क्या है ?

माधो : नमस्ते बहू जी।

फूल : कौन है तू मुझे बहू जी कहने वाला।

माधो : बाप रे।

अमिता : (गम्भीरता से) यह अशोक बाबू का मकान है न ?

माधो : जी।

अमिता : तुम कौन हो ?

फूल : जी, मैं उनकी नौकरानी हूँ।

अमिता : (हँसती है) कोई बात नहीं। तुम्हारे साफ़ कपड़ों से माधो धोखा खा गया। क्यों माधो ?

माधो : जी बीबी जी।

अमिता : अशोक बाबू घर में ही हैं ?

फूल : जी।

अमिता : तुम्हारा क्या नाम है ?

फूल : जी, मेरा नाम तो फूल है। ख़बर करूँ ?

अमिता : हाँ।

* * *

(अशोक और अमिता)

अशोक : तुम तो पहचानी नहीं जातीं अमिता। बहुत दुर्बल हो गयी हो।

अमिता : मैं तो ठीक हूँ, पर तुम्हें देखकर मुझे बहुत दुःख हुआ अशोक। आज तुमसे बिछुड़े हुए मुझे सात वर्ष हुए। इन सात वर्षों में मेरी दुनिया

बहुत बदल गई। यूनिवर्सिटी के वे दिन तुम्हें भूले तो न होंगे। कभी-कभी पत्र-पत्रिकाओं में तुम्हारी कोई रचना पढ़ने को मिल जाती थी। तुमने तो अपनी कोई पुस्तक मुझे कभी भेजी ही नहीं। शायद हम इस योग्य नहीं थे। यही न ?

अशोक : आप तो इस योग्य हैं कि मेरी पुस्तकें ही क्या, चाहें तो मुझ जैसे लेखक को भी खरीद सकती हैं।

अमिता : लेकिन, मैंने तुम्हारी पुस्तकें खरीदी नहीं। सोचा जिस दिन पुस्तकें तुम अपने हाथ से दोगे, उसी दिन पढ़ूँगी, नहीं तो नहीं पढ़ूँगी। (**रुककर**) तुम्हें यह सुनकर आघात लगा ?

अशोक : क्यों ? आघात क्यों लगता ?

अमिता : लेखक को यदि आघात पहुँचाना हो उससे कहना चाहिये कि किसी ने उसका कुछ भी नहीं पढ़ा।

अशोक : लेकिन तुम्हारे प्रयत्न करने पर भी, आघात तो दूर, मुझे बुरा तक नहीं लगा। हाँ, कुछ-कुछ सुख-सा लगा।

अमिता : क्यों ?

अशोक : एक संदेह था। वह दूर हो गया।

अमिता : कैसा संदेह ?

अशोक : तुम अभी आकर बैठी हो, मेरी मेहमान हो, थकी हुई हो। बैठते ही झगड़ा करना ठीक नहीं।

अमिता : करो न झगड़ा। मैं तुमसे झगड़ा करने ही आयी हूँ।

अशोक : आज सात वर्ष के बाद मैं तुम्हारा मुँह देख पाया हूँ। जीवन में तुम्हें फिर कभी देख पाऊँगा, ऐसी आशा नहीं थी। लेकिन जो कल्पना में सम्भव नहीं होता, वह जीवन में हो जाता है। यही तो विचित्रता है—यही तो....
(**आवाज देता है**) फूल।

फूल : (**दूर से**) जी आई।

अमिता : क्यों ?

अशोक : तुम हाथ मुँह तो धोओगी न ?

अमिता : मेरे लिए कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं। जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, मैं स्वयं ढूँढ़ लूँगी।

अशोक : (उसके मुँह की ओर ताकता हुआ) तब ठीक है।

फूल : (पास आकर) जी, बाबू जी।

अशोक : तुमसे क्या कहना था ? हाँ, तुम चाय का प्रबंध करो।

फूल : जी, बहुत अच्छा !

* * *

(अमिता फूल के साथ जाती है)

अमिता : तुम्हारे बाबू जी बहुत अच्छे हैं न फूल ?

फूल : बहुत अच्छे हैं बीबी जी।

अमिता : हमें तो अच्छे नहीं लगे।

फूल : क्यों बीबी जी ?

अमिता : बड़े कठोर हैं।

फूल : कठोर तो हैं बीबी जी, पर आदमी हैं बहुत अच्छे। अगर बाबू जी न होते तो आज मैं सड़क पर कहीं भीख माँगती होती।

(रोती है)

अमिता : रोते नहीं हैं। तेरे बाबू की ज़रा सी बुराई कर दी तो तू रोने लगी। बड़ी स्वामी-भक्त मालूम होती है।

(अशोक पुकारता है।)

अशोक : फूल !

फूल : जी आई !

अशोक : देखो फूल, गाड़ी के वक्त तक आज रात को ये यहीं रहेंगी।

फूल : जी, माधो भी रहेगा ?

अशोक : हाँ, माधो भी रहेगा। जहाँ मालकिन रहेगी, वहाँ, नौकर रहेगा। क्यों ?

फल : जी, मैंने वैसे ही पूछा।

* * *

(अमिता और अशोक)

अमिता : बच्चे आजकल कहाँ हैं ?

अशोक : (हँसकर) बच्चे तो नहीं हैं, कहाँ बताऊँ ?

अमिता : और श्रीमती जी ?

अशोक : श्रीमती जी से जब से विवाह हुआ, तब से इस घर में कभी आई ही नहीं ।

अमिता : (आश्चर्य से) आई ही नहीं ? कितने दिन हुए तुम्हारे विवाह को ?

अशोक : सात साल हुए जी ।

अमिता : (दुःख से) मज़ाक न करो अशोक । तो तुमने विवाह नहीं किया ? नहीं किया न !

(फूल और माधो)

माधो : तेरा नाम फूल है न ?

फूल : और तेरा नाम माधो ?

माधो : हाँ ।

फूल : अच्छा ।

माधो : तू कौन जात है ?

फूल : मैं तो अहीर हूँ ।

माधो : मैं भी अहीर हूँ ।

फूल : अच्छा ।

माधो : तू कहाँ की रहने वाली है ?

फूल : मैं तो बुलंदशहर जिले की हूँ ।

माधो : मैं भी बुलंदशहर जिले का हूँ ।

फूल : अच्छा ।

माधो : मैं अब बीस साल का हुआ ।

फूल : और मैं सोलह की ।

माधो : अच्छा ।

फूल : (दुःख से) मेरे मा-बाप दोनों मर गए।
माधो : मेरे दोनों जिन्दा हैं।
फूल : मेरा दिमाग थोड़ा-थोड़ा खराब रहने लगा है !
माधो : मेरा दिमाग भी (रुक कर) ऐं।

(फूल हँसकर भाग जाती है)

रुक तो।

(फूल और ज़ोर से हँसती है)

*   *   *

(अशोक और अमिता)

अशोक : पहले तुम सुनाओ।
अमिता : नहीं, पहले तुम सुनाओ।
अशोक : मेरा जन्म झोपड़ों के एक ऐसे गाँव में हुआ जहाँ पढ़ने-लिखने को कोई बात ही नहीं उठती थी। पता नहीं कैसे संस्कार थे कि बचपन से ही मैं कोयला लेकर घर की दीवारों पर कुछ न कुछ काढ़ता रहता था। तुम्हें आश्चर्य होगा, पढ़ने की बात उठाने पर मेरा सबसे पहला विरोध करने वाली मेरी मा थी। जिस कुल में सदा हल चलता आया हो; उसमें काग़ज़ क़लम की बात चलाना नई बात थी। मा ने समझा मैं कामचोर हूँ और उसके लिए उन्होंने मुझे कई बार मारा।
अमिता : (हँसते हुए) बचपन में पिटने के कारण ही तुम स्वभाव के इतने कठोर हो गए हो।
अशोक : पैसा न होने पर अनेक संकटों का सामना करते हुए एक दिन मैंने अपनी शिक्षा समाप्त की। जब मैं गाँव लौटा तो बहुत प्रसन्न था। गाँव के लोग मेरे चारों ओर घिर आये। मैंने कहा : इस गाँव की मिट्टी के प्रसाद और आप सबके आशीर्वाद से मैंने अपनी शिक्षा पूरी की। और अब एक कॉलेज में नौकर हो गया हूँ। पर इससे

उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। एक वृद्ध ने कहा : हम तो समझते थे तू थानेदार होगा, पर तू तो मास्टर निकला।

अमिता : (हँसती हुई) बहुत खूब।

अशोक : उसी दिन दुःखी होकर मैंने सदा के लिए गाँव छोड़ दिया। कॉलेज में आते ही मेरी वह उदासी मिट गयी। अपने विद्यार्थियों के बीच रहकर जिस सुख का अनुभव मैंने किया, उसे बताना कठिन है। पर शीघ्र ही मुझे वहाँ से हटना पड़ा।

अमिता : किसी से झगड़ा हो गया ?

अशोक : नहीं झगड़ा किसी से नहीं हुआ।

अमिता : फिर भी कोई कारण तो रहा ही होगा।

अशोक : एक ही कारण मेरी समझ में आता है अमिता, और वह यह कि आते ही वहाँ मुझे सब जान गए। मेरा यश ही मेरे लिए घातक सिद्ध हुआ।

अमिता : पर तुम किसी दूसरे कॉलेज में होने का प्रयत्न करते।

अशोक : कई स्थानों पर ऐसा हुआ कि लिए जाने वाले व्यक्ति का नाम पहले से ही निश्चित रहता था। इंटरव्यू एक ढोंग मात्र ही रहता। यह सब देखकर बड़ी विरक्ति हुई। पर एक स्थान पर मेरे साथ जो व्यवहार हुआ, उससे मुझे इतना मानसिक क्लेश हुआ कि शिक्षा विभाग में जाने का विचार ही मैंने जीवन भर के लिए छोड़ दिया।

अमिता : क्यों क्या हुआ ?

अशोक : इंटरव्यू समाप्त होने पर जब मुझे पूरी आशा थी कि मैं ले लिया जाऊँगा तब कमेटी के एक सदस्य ने कहा : लेकिन देखिए, एक बात है। हमने सुना है, आप प्रेम पर कविताएँ लिखते हैं। जब तक आप हमारे कॉलेज में पढ़ायेंगे, तब तक आप न तो प्रेम पर कवितायें लिखेंगे, न कवि सम्मेलनों में ऐसी कवितायें पढ़ेंगे और न उन्हें कहीं छपवायेंगे।

अमिता : क्या जवाब दिया तुमने ?

अशोक : मैंने कहा : मैं ऐसा कोई वचन नहीं दे सकता। मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ, कविता लिखना नहीं छोड़ सकता।

अमिता : अरे, उस समय हाँ कह देते। स्थायी होने पर फिर देखा जाता। व्यवहार-बुद्धि तुम में बिल्कुल नहीं है।

(रुककर) लेकिन मैं जानती हूँ तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा, अशोक। जब तुम पढ़ते थे तो तुम्हारी सबसे बड़ी इच्छा किसी यूनिवर्सिटी में रहकर ज्ञान का दान करने की ही थी।

अशोक : तभी एक प्रकाशक मेरे पास आए और सहानुभूति के स्वर में बोले : क्या चिंता करते हैं, ऐसी छोटी-मोटी नौकरी की। मैं आप को एक सुन्दर-सा कमरा दिए देता हूँ। निश्चिन्त मन से वहाँ बैठकर लिखिए। लेखकों की शिकायत है कि उन्हें प्रकाशक नहीं मिलते, पर मैं देखना चाहता हूँ कि आप अधिक लिख सकते हैं या मैं अधिक छाप सकता हूँ। कॉलेज में आपको सौ रुपये मिलते थे, मैं तीन सौ देने को तैयार हूँ। फिर देखिए कितनी जल्दी आपको ख्याति मिलती है। अगर यही यूनिवर्सिटी वाले आपकी पुस्तकों को कोर्स में रखने के लिए न दौड़ते फिरें, तो मेरा नाम नहीं। मैंने शांत भाव से पूछा : इन पुस्तकों पर कापी राइट किसका होगा ? उसने कहा : ऑफ़िस टाइम में आप जो लिखेंगे, वह तो हमारी ही चीज़ होगी। मैंने दृढ़ता से उत्तर दिया : मैं किसी भी मूल्य पर अपनी पुस्तकें बेचने को तैयार नहीं।

अमिता : पुस्तकें बेचने के लिए तो मैं भी न कहूँगी। अच्छा हुआ तुम इस भयंकर जाल से बच गए।

अशोक : उठते हुए उसने फिर कहा : अच्छा छोड़िए भी। आप हमारे पत्र को चलाइये। मैं उसी के लिए तीन सौ रुपये देने को तैयार हूँ। हम ऑफ़िस की सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। प्रेस बन्द हो रहा था। उस समय जो दृश्य मैंने देखा उस पर विश्वास नहीं हुआ।

अमिता : क्यों क्या हुआ ?

अशोक : फाटक के पास कठोर आकृति का एक व्यक्ति खड़ा था। प्रेस से मज़दूर जैसे-जैसे बाहर निकलते जाते थे, वह उनकी तलाशी लेता जा रहा था। मैंने पूछा : यह क्या ? कहने लगा : ये लोग टाइप आदि चुरा लेते हैं। मैंने फिर पूछा : यह तलाशी रोज़ होती है ? उसने कहा : हाँ, मामूली सी बात है। आप इतना चौंकते क्यों हैं ? मैंने कहा : देखिए, आपके यहाँ काम करना मेरे लिए संभव नहीं है। जहाँ मनुष्य पर इतना अविश्वास किया जाय, वहाँ बैठकर मानवता के गीत मैं नहीं गा सकता। साहित्य, संस्कृति और कला की निधियों को उस स्थान पर बिखेरना मैं मनुष्य की सृजन-शक्ति का अपमान समझता हूँ जहाँ दरिद्रता के कारण उसका ऐसा अपमान किया जाय।

अमिता : लेकिन अशोक, अगर मजदूर सच्चा है तो उसे अपनी तलाशी देने में हिचक क्यों होनी चाहिए ?

अशोक : मज़दूर को ये लोग सच्चा मानकर नहीं चलते अमिता, उसे झूठा मानकर चलते हैं। अगर हम किसी पर अविश्वास करते हैं तो उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव उस पर पड़ता है, और यदि वह बुरा नहीं भी होता, तो भी बुरा बन जाता है। मज़दूर को अगर इतना दिया जायगा कि उसका पेट भर सके, तो वह बेईमान नहीं हो सकता। यह न भूलो कि गरीब को बेईमान बनाने के कारण भी धनी लोगों ने ही जुटाये हैं। इस सारी व्यवस्था में ही कहीं भारी दोष है अमिता, यह तुम नहीं जानतीं।

अमिता : लेकिन संसार जैसा है उसको वैसा ही मानकर तो चलना पड़ता है। तुम्हारे वहाँ काम न करने से वहाँ का काम रुक तो नहीं गया।

अशोक : मुझे लगता है मैं नौकरी करने के लिए नहीं बना हूँ, वैसे ही जैसे मैं विवाह करने के लिए नहीं बना। मुझे इतना ही संतोष पर्याप्त है कि जो काम मेरी आत्मा के विरुद्ध था, वह मैंने नहीं किया।

अमिता : आत्मा के विरुद्ध काम करने को तो मैं नहीं कहती, अशोक !

(फूल का प्रवेश)

फूल : बाबू जी खाना तैयार है। बड़ी मेज पर लगा दिया है।

अशोक : आओ अमिता।

अमिता : भूख तो मुझे नहीं है। लेकिन चलिए।

(फूल और माधो)

माधो : फूल !

फूल : मेरा नाम फूलकुँवर है।

माधो : अच्छा फूलकुँवर, इतनी देर से तेरे बाबू हमारी बीबी जी से क्या बातें करते रहे ? हम भी तो इतनी देर से साथ-साथ हैं। हमने तो दो बातें भी नहीं कीं।

फूल : अरे, तुझे पता नहीं। हमारे बाबू और तेरी बीबी जी कॉलेज में साथ-साथ पढ़ते थे। फिर तेरी बीबी जी की शादी दूसरी जगह हो गयी। बाबू जी ने फिर विवाह नहीं किया। अब बहुत दिनों बाद मिले हैं। दोनों अपने सुख-दुख की बातें कर रहे होंगे। तुझे तो मैं पहले से नहीं जानती। क्या बात करूँ ?

माधो : अच्छा फूलकुँवर, तू कह रही थी कि बीबी जी का एक फोटो बाबू जी के पास तूने देखा। जब बीबी जी बाबू जी की बहू नहीं हैं तो वे उनका फोटो क्यों रखते हैं !

फूल : अरे, जो जिसको अपने साथ नहीं रख सकता, वह उसका फोटो रखता है। इतनी-सी बात भी नहीं समझता।

माधो : फूलकुँवर !

फूल : हाँ !

माधो : तेरे पास तेरा कोई फोटो है ?

फूल : नहीं तो।

माधो : तब कैसे होगा ?

फूल : क्या कैसे होगा रे ?

(समझकर) ओह !

(हँसती है)

★ ★ ★

(ग्रमिता ग्रौर ग्रशोक)

ग्रमिता : इतना ही समझ लो कि विवाह हो गया। क्यों हुग्रा, कैसे हुग्रा, ग्रब यह सब बेकार है। ग्रगर मैं कहूँ भी कि इस विवाह को रोकने को मैंने भरसक कोशिश की, पर रोक न सकी, तो कौन मेरा विश्वास करेगा ग्रौर उस विश्वास से ग्रब लाभ ही क्या है ?

ग्रशोक : लेकिन इस बात की व्याख्या तुमसे माँग कौन रहा है ?

ग्रमिता : मुझे इस बात का दुःख है ग्रशोक, कि तारों की छाया में एक दिन जो वचन मैंने तुम्हें दिया था, उसे मैं पूरा न कर पाई। कैसे-कैसे सपने थे हमारे—हम साथ-साथ रहेंगे, साथ-साथ लिखेंगे, नाम हो जाने पर जब एक साथ कहीं जाया करेंगे तो न जाने कितनी ग्राँखें हमें एक साथ देखा करेंगी। वह सपना टूट गया ग्रशोक। कितना बड़ा सपना था वह ! उफ़ !

ग्रशोक : फिर भी मुझे यह जानकर संतोष हुग्रा कि तुम सुखी हो। सुना है पिछले तीन-चार साल में ही कृष्णचंद्र ने लाखों की सम्पत्ति इकट्ठी कर ली है। लोगों का कहना है उसके पिता बैरिस्टर मोहनचंद्र ने जीवन भर में जितना कमाया होगा, उतना कृष्णचंद्र ने थोड़े दिनों में कमा लिया। फ़ौजदारी के वकील का तो यही होता है। भाग्य चमक गया तो पौ बारह हैं।

ग्रमिता : (**लजाकर**) जिस साल मेरी शादी हुई, उस साल तो हज़रत बी० ए० में ही फ़ेल हो गये थे। जैसे-तैसे पिता के दबाव से लॉ किया, नहीं तो घर से निकाले दे रहे थे। (**स्वस्थ होकर**) रुपया कमाया, यह तो तुमने ठीक सुना, पर ग्रपनी योग्यता से कमाया... रहने दो मेरा चुप रहना ही ठीक है।

ग्रशोक : तो फिर क्या कहीं डाका डाला ?

ग्रमिता : मैं तो उसे डाका डालना ही समझती हूँ !

ग्रशोक : कैसा डाका ? तुम साफ़ क्यों नहीं बतलातीं ?

अमिता : न सुनो अशोक, मेरे मुँह से न सुनो।

अशोक : नहीं-नहीं, तुम्हें बतलाना होगा। तुम्हें मेरी सौगन्ध है जो कुछ भी छिपाओ।

अमिता : बतलाती हूँ। इतनी बड़ी सौगन्ध न दो। तुम जानते हो संसार में सब तुम जैसे आदर्शवादी नहीं होते। मुकदमे आते थे, यही चोरी-डकैती के। चोरों-डकैतों के पास किसी चीज़ की कमी, हो, रुपये-पैसे की कमी नहीं होती। हो, तो एक रात की उन्हें मुहलत दे दो। वह माल अक्सर हमारे यहाँ रख जाते। मैंने मना किया, तुम यह सब न रखो, अपनी फ़ीस से वास्ता रखो। पर मेरी कौन सुनता।

अशोक : पैसे के लिए व्यक्ति का इतना पतन हो सकता है। ओह !

अमिता : एक दिन एक औरत मेरे पैरों पर आकर गिर पड़ी। रोते-रोते उसने मेरे पैर भिगो दिए। कहने लगी : मेरे आदमी को क़त्ल के मुक़दमें में गिरफ्तार कर लिया है। पर क़त्ल मेरे आदमी ने नहीं किया है, बहू जी। आपके बाबू जिसकी ओर से मुकदमा लड़ रहे हैं, उसी ने किया है। मैं अपने सोहाग की सौगन्ध खाकर कहती हूँ बहू जी....। आँचल पसार कर मैं भीख माँगती हूँ मेरे आदमी को बचाइए। मैं ग़रीब हूँ, पर मेरे पास चाँदी गिलट के जो गहने हैं, वह आप सब ले लीजिए। बाबू जी से आप कहिए। आपकी बात वे टाल नहीं सकते। उसकी आँखों में इतनी सरलता थी अशोक कि वह झूठ नहीं बोल सकती थी। मैंने कहा : तू घबरा मत, मैं उन्हें समझाऊँगी।

अशोक : क्या हुआ इसका परिणाम ?

अमिता : मैं उनके पास गई अशोक, और समझाया कि उस आदमी का कोई अपराध नहीं। सच-झूठ को देखकर ही आप इसमें हाथ डालें। पर उन्होंने जो जवाब दिया उसको सुनकर मैं दंग रह गई। कहने लगे: मेरा काम सच-झूठ का फ़ैसला करना नहीं, अपने मवक्किल की पैरवी करना है। तुम जाओ, मेरे कामों में इस तरह दख़ल न दिया करो।

अशोक : तुम भीतर से इतनी दुःखी हो अमिता, इसका मुझे पता नहीं था।

अमिता : एक दिन ऐसा मुकदमा आया जिसमें एक आदमी एक लड़की को लेकर भाग गया था। लड़की पकड़ी गई और उसके पति को सौंप दी गई। पर वह अपने बयान बदलने को तैयार नहीं थी। लड़की हमारे घर आई। साहब उससे प्यार की बातें करने लगे। मैंने अलग बुलाकर पूछा : यह क्या हो रहा है ? बोले : लड़की को अपना पति पसन्द नहीं। वह उसके ख़िलाफ़ बयान देगी। समझा रहा हूँ कि किसी भी सुन्दर आदमी से तेरी शादी कर दूँगा। यदि कोई तैयार न हुआ, तो मैं तुझसे शादी करने को तैयार हूँ। यह सब अभिनय है। बयान होने तक मुझे माफ़ करो। यदि थोड़े झूठ बोलने से मुकदमा हमारे फेवर में हो जाय, तो क्या नुक़सान है। मैंने कहा : लेकिन मैंने आपको उसे छूते देखा है। इसे तो अभिनय नहीं कहते। बोले : इत्मीनान दिलाने के लिए यह सब कुछ करना होगा। तुम जाओ। इसके बाद मेरा दिल टूट गया अशोक ! अपने मन को मैंने बहुत समझाने की कोशिश की, पर लगा, यदि इस व्यक्ति के साथ मैं रही तो या तो मैं पागल हो जाऊँगी या किसी दिन आत्महत्या कर बैठूंगी।

अशोक : (**साँस फेंककर**) हूँ।

(**रुककर**) तुम कृष्णचंद्र से बिना पूछे आई हो ?

अमिता : मैं भागकर नहीं आई अशोक ! पिता के यहाँ जा रही हूँ। वहाँ से एक पत्र लिख दूँगी। सुख भोगकर बीमारों का सा जीवन बिता चुकी। अब ऐसे जीवन से मुक्ति चाहती हूँ।

(**रुककर**) तुम्हें मुझसे डर लगता है ?

अशोक : डर मुझे किसी से नहीं लगता पर तुम्हारा जीवन अभी कृष्णचंद्र की मुट्ठी में बन्द है। यह तुम जानती हो ?

अमिता : मेरा पीछा अब वे नहीं करेंगे। कुछ दिन से एक ईसाई लड़की उनका पीछा कर रही है। बहुत संभव हैं कुछ दिनों में दोनों का

विवाह हो जाय। ऐसी दशा में इस संसार में मैं बिल्कुल अकेली हूँ

अशोक : (स्नेह से) अमिता !

अमिता : हाँ, अशोक

अशोक : जिस दिन तुमसे परिचय हुआ था, उस दिन हरसिंगार का एक पौधा मैंने अपने हाथों से लगाया था। वह अब बहुत बड़ा हो गया है। उसे देखोगी नहीं ?

अमिता : देखूँगी अशोक, जरूर देखूँगी। आओ !

* * *

(फूल और माधो)

माधो : फूलकुँवर !

फूल : हाँ रे। हाँ रे। हाँ।

माधो : थोड़ी देर में हम चले जायँगे।

फूल : हाँ रे।

माधो : तू कितनी अच्छी है, फूलकुँवर।

फूल : अच्छी तो मैं हूँ रे।

माधो : मेरा तो यहाँ से जाने को मन नहीं करता फूलकुँवर।

फूल : देख माधो, तू बहुत भोला आदमी है, इसी से तेरे ऊपर गुस्सा नहीं आता, तरस आता है। गाँव में जब मैं रहती थी तो पड़ोस में हमारी जात का एक लड़का रहता था। वह खाते पीते घर का था, मेरे मा-बाप बहुत गरीब थे। जैसे तेरा, वैसे मेरा मन भी, उसके साथ रहने को तब करता था। यह मन ऐसा है माधो, कि ऊँची चीज़ की ओर बढ़ता है। जो बात तू कह रहा है, यही बात एक दिन बेसरम होकर मैंने उससे कही थी। वह हँस पड़ा....मेरे ऊपर नहीं हमारी गरीबी के ऊपर। तब मुझे इतनी लाज आई कि जमीन में गड़ जाऊँ।

माधो : (आश्चर्य से) उसने 'ना' कर दी।

फूल : हाँ। फिर मैं बाबू जी के साथ आ गई। इन्होंने मुझे चार आखर सिखाये। मेरे कपड़े पहनने का ढंग थोड़ा बदल गया। 'अइयो'

'जइयो' की जगह 'आना' 'जाना' कहने लगी। मैं गाँव गई। तुझे ताज्जुब होगा माधो, सुनते ही वह लड़का मेरे पास दौड़ा आया। पहले तो पहचान ही नहीं सका। जब पहचाना तो अकेले में मुझे पाकर अपनी भूल की माफी माँगी। मैंने जवाब कुछ भी नहीं दिया। सिर्फ ऐसी नजर से देखा जो कहती थी : गाँव की वह फूलकुँवर मर गई गँवार, यह दूसरी फूलकुँवर है।

माधो : (उत्साह से) यह हुआ सवाल का जवाब।

फूल : सवाल का जवाब नहीं रे, जवाब का जवाब।

माधो : (खिसियाकर) हाँ हाँ, जवाब का जवाब।

फूल : जवाब देने मैं नहीं गई थी माधो। लेकिन अपने आप ही न जाने कैसे पहली पीर मिट गई थी।

माधो : पहली पीर मिट जाती है, फूलकुँवर ?

फूल : जा, मैं नहीं जानती।

* * *

(अशोक और अमिता)

अमिता : इस बीच तुमने और क्या लिखा है ?

अशोक : कुछ भी नहीं।

अमिता : (**आश्चर्य से**) क्यों ?

अशोक : किसके लिए लिखूँ ?

अमिता : क्या मतलब है इस बात का ?

अशोक : मेरे काम से किसी को प्रसन्नता नहीं होती, अमिता। तब मैं किसके लिए काम करूँ ?

अमिता : लिखने से यश मिलता है। वह क्या छोटी प्राप्ति है ?

अशोक : यश तो मिल जायगा अमिता, पर मैं उसे किसके चरण-प्रांत में ढालूँगा ? उस यश के गौरव से किसका अभिषेक करूँगा ? अपने हाथ से गूँथी माला क्या अपने गले में डालने के लिए होती है ?

अमिता : लिखने से धन मिलता है। तुम्हारी बात मैं नहीं जानती, पर ग़रीबी में मनुष्य बड़ा बनता है, यह भूल है। ग़रीबी में मनुष्य की आत्मा पिस जाती है। दरिद्रता और दुःख का समर्थन किसी भी आधार पर मैं नहीं कर सकती। संसार में न पैसे की कमी है और न सुख की। परन्तु ये हम ही हैं जो जीवन के बड़े बरदानों से वंचित रहते हैं।

अशोक : संघर्ष और हर्ष में मैं भी विश्वास करता हूँ अमिता। लेकिन मेरे सुख की भावना दूसरों के सुख की भावना से भिन्न है। मुझे सुख से अधिक आंतरिक शांति चाहिए। शांति की आंतरिक उपलब्धि के बिना कोई भी साहित्यिक सृजन नहीं कर सकता।

अमिता : लेकिन सुख और शांति का रहस्य भी कर्म ही है, अशोक। जब मनुष्य कर्म में लीन रहता है, तब उसकी सारी शक्तियाँ सजग रहतीं हैं। आनन्द का मूल है कर्मशीलता। उसी को तुम छोड़ बैठे हो।

अशोक : हाँ, कर्म यदि मन के अनुकूल हो, तो कर्म ही सुख बन जाता है। पर कर्म के साथ ही जीवन के रस के लिए एक और बात की आवश्यकता है। कलाकर को कर्म ही नहीं, उस कर्म के लिए प्रेरणा भी चाहिए।

अमिता : यह बात तो है।

अशोक : प्रेरणा ही नहीं, प्रेरणा के प्रतीक से बल चाहिए।

अमिता : हाँ, मन के योग के बिना कोई बड़ा काम होना तो कठिन है।

अशोक : इसी से मैंने कहा, किसके लिए ? मेरे काम से किसी को प्रसन्नता नहीं होती, ऐसा नहीं है। पढ़ने वालों को सुख मिलता ही होगा, न मिलता तो मेरी रचनाओं के लिए माँग ही न करते। बहुत पहले जब मैं कवि-सम्मेलनों में जाया करता था तो तालियों की गड़गड़ाहट समूह की प्रसन्नता की सूचना देती थी। मुझे अच्छा न लगता हो, ऐसे बात नहीं। पर मैं जानता था, इस प्रसन्नता का मुझ से सीधा सम्बन्ध नहीं है। उस भीड़ में भी, लगता था मैं अकेला हूँ। मेरे हृदय में रहने वाले कवि का सम्मान था वह। परन्तु

व्यक्ति के रूप में उनमें से मुझे कोई नहीं पहचानता था। ऐसा हुआ है कि सारे दिन मैं भूखा रहा हूँ और रात को कवि-सम्मेलनों में मैंने भाग लिया है। पैसा बहुत सी सुविधाएँ जुटाता है, मैं जानता हूँ! पर आज पैसा होने पर भी मेरे मन की उदासी तो दूर नहीं हुई। सब प्रसन्न हैं, पर जिसे मैं चाहता हूँ प्रसन्न हो, वह प्रसन्न है या नहीं, मैं नहीं जानता। मेरे कामों से उसके अधरों पर मुसकान दौड़ती है या नहीं, पता नहीं। तब, इस धन को, इस यश को लेकर मैं क्या करूँ?

अमिता : एक बात पूछूँ?

अशोक : हाँ।

अमिता : तुम ऐसी दशा में मेरे ऊपर विश्वास कर सकते हो?

अशोक : कैसी दशा में?

अमिता : दूसरे की पत्नी होने की दशा में।

अशोक : आघात सहते-सहते मैं स्वभाव से अविश्वासी हो गया हूँ, अमिता। फिर भी मैं तुम्हारे ऊपर बहुत विश्वास करता हूँ। किस बात का विश्वास करता हूँ, कभी सोचा नहीं। केवल विश्वास करता हूँ, इतना जानता हूँ।

अमिता : एक बात बता सकोगे?

अशोक : बात क्या है, उसका पता लगे बिना वचन कैसे दिया जा सकता है!

अमिता : वह विशेष मुख कौन है?

अशोक : क्या करोगी जानकर?

अमिता : आवश्यकता है।

अशोक : जान जाओगी तो घृणा करने लगोगी। जाओ अमिता, अपने घर जाओ।

अमिता : इतना ही बतला दो। इसके बाद जीवन भर और किसी बात के लिए हठ नहीं करूंगी।

अशोक : उसका नाम....अमिता है।

(अमिता रोती है)

(चुप करने का प्रयत्न करते हुए)

रोते नहीं हैं, अमिता !

(अमिता सिसकियाँ लेती है।)

अमृत !

(अमिता की सिसकियाँ बन्द नहीं होतीं)

अमी !

अमिता : यह तुमने क्या कह दिया अशोक ?

(शांत होती है)

अशोक : मेरे जीवन का काम अधूरा पड़ा है और इतनी देर हो गयी है एक आशा की किरण की प्रत्याशा में, कि कभी-कभी लगता है मेरा काम पूरा नहीं हो पायेगा। मेरा जीवन मेरे मन के अनुकूल नहीं। भीतर बाहर का सामंजस्य यदि जीवन में हो जाया करता तो फिर कहना ही क्या ? भीतर की जो पुकार है बाहर यदि उसकी पूर्ति हो जाया करती। परन्तु यदि जो लगा हुआ है....

अमिता : मुझे बताओ न अशोक, यह कैसा दर्द है जो तुम्हारे भीतर उठा है।

अशोक : याद पड़ता है आज सात वर्ष हो गये उस बात को। जब मैं आगरे आया तो मेरी पहली आकांक्षा तुम्हें देखने की थी। मा से पता चला, उसी रात को तुम्हारा विवाह होने वाला है। तुम्हें स्मरण होगा, मैं अत्यन्त अधीर होकर तुमसे बात करने गया था, पर पता नहीं तुम्हें कैसे पता चल गया कि तुमने अपनी छोटी बहन को मेरे पास भेजा जिसने कहा : जीजी ने कहा है वे नहीं मिल सकेंगी। आप इसी समय लौट जायँ। मैंने आवेश में आकर पूछा : लेकिन क्यों ? उसने कहा : मैं कुछ नहीं जानती। लेकिन उन्होंने कहा है : यह उनकी आज्ञा है। जैसे तूफान की लहरें शान्त हो जाती हैं, वैसे ही मैं मूक भाव से लौट गया।

अमिता : उस समय तुमने मेरी इज़्ज़त बचा ली। इसके लिए मैं जीवन भर आभारी रहूँगी।

अशोक : लेकिन यह मेरे जीवन की सबसे बड़ी पराजय थी। मुझे कितना ही बड़ा यश मिल जाय, परन्तु अपने जीवन की यह हार कभी भुलाई नहीं जा सकती।

अमिता : रात-दिन तुम क्या सोचते रहे हो अशोक, यह मैं नहीं जानती; पर मैं....

अशोक : (बात काटकर) सोचता रहा हूँ कि अरुणोदय-वेला में पलकें खोलते ही मैं तुम्हारा उषा से अधिक रम्य, प्रभात से अधिक स्फूर्ति-दायक, गुलाब की पंखुरी से अधिक कोमल मुख देख पाता। जब मैं अपने काम पर जाता, तब जाने से पहले तुम केवल एक बार मीठा मुस्करा देतीं....वह मुसकान जो अपनी ओर खींचती तो है, पर चरणों को कर्म-पथ पर अग्रसर भी करती है। संध्या को जब पंछी अपने बसेरे को लौटते, तब तुम्हारी प्रतीक्षारत पलकों में पली स्नेह-भरी एक चितवन से मेरी थकान धुल जाती। और तब रात आने पर तारों की छाया में हम देर तक एक दूसरे से बिना कुछ कहे, चुप बैठे रहा करते।

अमिता : (धैर्य से) देखो अशोक, जीवन में निराश होना मैंने नहीं सीखा। जिस दिन तुम्हारा खोया हुआ सुख वापिस मिल जाएगा, वह मेरे जीवन का सबसे सुखपूर्ण दिवस होगा। मैं उसी दिन गौरव से सिर ऊँचा कर सकूँगी।

मेरे मन में भी बहुत कुछ कहने को है। इच्छाओं का सागर जब हिलोरें लेता है, तब वह सारे बंधन तोड़ देना चाहता है, पर किनारे की सीमा उसे पीछे लौटा देती है। कामनाएँ तो अशोक नित्य ही हाथ पसारा करती हैं। बिजली की उस चकाचौंध को लेकर मैं क्या करूँ, पल भर में काले बादलों में जिसके छिप जाने की संभावना है, इससे तो वह दीप भला है जो निरन्तर अपनी मन्द आभा फैलाता है। कामना की सिद्धि के लिए जीवन में धैर्य की आवश्यकता है। उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, अशोक।

अशोक : परन्तु मेरी वह कामना अब मिट गई, अमिता। दुःख जब आता है तो सबसे पहले वह कामना को खाता है और एक दिन उसे पूरा खा जाता है।

अमिता : तब क्या तुम भी मेरा साथ नहीं दोगे ? ऐसी बातें तुम क्यों करते हो ?

अशोक : उठो अमिता, सामने छत पर थोड़ी देर बैठें। यह शायद इस हर-सिंगार के वृक्ष का प्रभाव है।

अमिता : चलो।

* * *

(फूल और माधो)

माधो : फूलकुंवर।

फूल : हाँ।

माधो : आज तेरे बाबू और हमारी बीबी जी बातें करते ही रहेंगे क्या ?

फूल : ऐसा ही तो लगता है।

माधो : ऐसी भी क्या बात है फूलकुँवर जो खतम ही नहीं होती। मैं भी चाहता था कि आज रात भर तुझसे बातें करूँ। पर मेरे मन में अब कोई बात उठती ही नहीं। ये बड़े लोग रात-दिन बैठे क्या बातें करते हैं, फूलकुँवर ?

फूल : बातें तो जिन्दगी की गिनी-चुनी हैं माधो, पर ये लोग एक बात कहने के लिये दुनिया भर की बातें करते हैं, फिर भी असली बात पर नहीं आते। तेरी बीबी जी और मेरे बाबू जी चार साल तो कॉलेज में साथ-साथ पढ़े और सात साल से अलग हैं, मगर एक दूसरे से पूरी बात नहीं कह पाये और तू सच समझ माधो कि अगर अस्पताल में पड़े दोनों की पास-पास मौत हो रही हो तो पिछली बातों को दुहराने में ग्यारह साल और लगायेंगे, पर मन की बात मन में ही रख कर ले जायेंगे। बड़े आदमियों की सब बातों में चक्कर चलता है माधो........चक्कर।

(अमिता और अशोक)

अमिता : जब तक जीवन है, तब तक बाधाएँ रहेंगी अशोक। केवल बचपन एक ऐसा काल है जिसमें बच्चे को किसी बात का ज्ञान नहीं होता, अतः दुख भी नहीं होता; परन्तु ज्ञान होते ही बहुत-सी बाहरी-भीतरी बाधाओं का उसे सामना करना पड़ता है। तब सपने, सपने नहीं रह जाते। तब उसे पता चलता है कि वस्तुओं का जो रूप बाहर से दिखाई पड़ता है, वह उनका वास्तविक रूप नहीं है। वास्तविक रूप के इसी ज्ञान को अनुभव कहते हैं। अतः जीवन में सफल होने के लिए हृदय के साथ एक और वस्तु की आवश्यकता होती है....वह है बुद्धि। व्यक्ति कितना ही भावुक हो, पर यदि वह विचार से काम नहीं लेता, तो उसके हाथ पड़ती है असफलता, निराशा।

अशोक : इस बुद्धि से शासित होने के कारण ही मैं देख रहा हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने को केन्द्र बनाकर चल रहा है। अपने को किसी प्रकार आगे बढ़ाना ही उसका लक्ष्य है। उसमें कौन कुचल जायगा, इसकी उसे चिन्ता नहीं। किसी के कुचल जाने से उसे कोई कष्ट भी नहीं होता। मैं देखता हूँ दूसरों का जो ध्यान रखते हैं, वे प्रायः पिछड़ जाते हैं। सबसे पहले सम्भवतः वे ही धक्का देते हैं, जिनका ध्यान रखा गया था।

अमिता : मैं जानती हूँ, यह सब देखकर भावुक व्यक्ति के हृदय को बड़ी ठेस पहुँचती है।

अशोक : संसार में कितना अत्याचार, कितना अन्याय हो रहा है, यह तुम नहीं जानतीं। बड़े घर की बहू हो न ! मैं देवता नहीं हूँ, मनुष्य हूँ। मनुष्य की भाँति ही घृणा, प्रेम, क्रोध, दया की वृत्तियाँ मेरे भीतर काम करती है। कभी-कभी निरपराध होने पर जब मेरा अपमान होता है, तो मेरी इच्छा होती है, मेरे हाथ में शक्ति होती और मैं अपने को अपमानित होने से बचा पाता या हँसी में काँटा चुभाकर दिखा पाता कि देखो काँटा चुभने से ऐसा दर्द होता है।

मेरा अपमान, मेरा अपमान नहीं, मेरे अन्तर में निवसित देवता का अपमान है, सज्जनता का अपमान, मानवता का अपमान। इसका उत्तर देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। धरती की छाती पर जो चट्टानें स्थान-स्थान पर बाधा बनकर खड़ी हुई हैं, उन्हें हटाना होगा।

अमिता : क्या ज़रूरत है कि चट्टानों से टकराया ही जाय, उन्हें बचाकर भी तो निकला जा सकता है।

अशोक : पर कहीं-कहीं रास्ता इतना सँकरा होता है कि चट्टान पूरे रास्ते को घेर कर बैठ जाती हैं और दूसरा कोई रास्ता नहीं होता और जीवन वहीं टकराकर मूर्च्छित हो जाता है। जीवन के मार्ग में इतनी चट्टानें हैं कि कहीं न कहीं उनसे टकराना ही होगा। जीवन भर उन्हें बचाकर नहीं निकला जा सकता।

अमिता : लेकिन लहरों की ताक़त तुम जानते हो अशोक, कितनी कम है। उससे टकरा कर वे स्वयं टूट जाती है। यदि वे उससे बराबर टकराती रहें तो सैकड़ों वर्षों में भी उसे नहीं रिस पायेंगी।

अशोक : लेकिन उन्हीं लहरों से बनी ऐसी वेगवती नदियाँ होती हैं जो उन्हें हज़ारों मील बहाकर ले जाती हैं। पहाड़ी नदियों को तुमने देखा है न?

अमिता : देखा है।

अशोक : नदियों में यह बालू जो तुम देखती हो यह सब चूर-चूर की हुई चट्टानें हैं।

अमिता : हाँ, हैं तो। लेकिन इससे तुम क्या कहना चाहते हो?

अशोक : जिस चट्टान को लहर नहीं तोड़ सकती, उसे नदी की तीव्र धारा तोड़ सकती है।

अमिता : हाँ।

अशोक : धारा नदी की लहरों का दूसरा नाम है। बहुत सी लहरियाँ मिलकर ही धारा बनाती हैं।

अमिता : हाँ।

अशोक : जीवन की बाधाओं से व्यक्ति अकेला नहीं लड़ सकता, परन्तु संगठित शक्ति से बाधाओं को चूर-चूर किया जा सकता है अर्थात् मेरा और तुम्हारा जो दुःख है उसे सामूहिक रूप देना होगा।

अमिता : परन्तु संसार में इस प्रकार के प्रयत्न कब नहीं हुए........दार्शनिक, धार्मिक, समाज-सुधारक और वैज्ञानिक संसार के स्वरूप को बदलने का बराबर प्रयत्न करते रहे हैं। लेकिन हुआ क्या ? संसार की दशा दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है।

अशोक : सृष्टि के प्रारम्भ से इन लोगों ने प्रयत्न नहीं किये, यह मैं नहीं कहता, इनके प्रयत्नों में सचाई नहीं थी, यह भी मेरा दावा नहीं; परन्तु जिस ढंग से आज तक काम किया गया, उसमें कुछ ऐसी कमी रह गई, जिससे काम कभी पूर्ण नहीं हो पाया। दार्शनिकों ने ऊँची से ऊँची कल्पनाएँ कीं। आज सारे संसार में उन कल्पनाओं का मान है। पर क्या उन कल्पनाओं से व्यक्ति का दुःख घटा ? कल्पनाओं के आधार पर व्यक्ति जीवन से दूर होता गया, निवृत्ति मार्ग का पथिक बना, निष्क्रिय हो गया! धार्मिकों के प्रयत्नों ने साम्प्रदायिकता का रूप लिया और आपसी झगड़े बढ़ाये। समाज सुधारकों का क्षेत्र भी बहुत सीमित रहा। रही वैज्ञानिकों की बात। उनकी खोज को विनाश में नियोजित किया गया।

अमिता : यह तो व्यक्ति के प्रयत्नों का बड़ा निराशाजनक चित्र है। व्यक्ति की आशा फिर कहाँ है ?

अशोक : व्यक्ति की आशा अभी एक स्थान पर है। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। पर उसकी बात सुने बिना संसार का कल्याण नहीं।

अमिता : वह कौन है ?

अशोक : उसे लेखक कहते हैं।

* * *

(अमिता अशोक, माधो और फूल)

अमिता : माधो।

माधो : जी बीबी जी।

अमिता : तुम स्टेशन जाओ। मैं थोड़ी देर में आऊँगी। टिकट ले लेना और मेरा बिस्तर लगा देना।

माधो : बहुत अच्छा बीबी जी। फूल भी स्टेशन जायगी ?

अशोक : (हँसकर) फूल !

फूल : जी बाबू जी।

अशोक : देखो, माधो स्टेशन जा रहा है। तुम उसके साथ जाओ। हम थोड़ी देर में घूमते हुए आयेंगे।

फूल : बहुत अच्छा बाबू जी।
(माधो से) चल भई, माधो !

माधो : चलो फूलकुँवर।

* * *

(अमिता और अशोक)

अमिता : यह तो कोई पार्क-सा लगता है।

अशोक : पार्क ही है।

अमिता : थोड़ी देर हम यहाँ बैठ नहीं सकते, अशोक ? इन पेड़ों के नीचे, जहाँ पत्रों के अंतराल से चाँदनी छनकर आ रही है, छाया और प्रकाश कैसे मिलन का खेल खेल रहे हैं। यह पवन जो फूलों की मीठी गंध लेकर बह रहा है, लगता है उन्हीं के जीवन-सुख का सन्देश दे रहा है।

अशोक : सारी बात यह है कि तुम थक गई हो। चलने का अभ्यास नहीं। मैंने कहा था—सवारी ले लें। पर नहीं, मुझे घूमना बहुत अच्छा लगता है ! थक गईं न ?

अमिता : मैं सचमुच थक गई हूँ अशोक—इस छोटे रास्ते से ही नहीं, जीवन के लंबे रास्ते से भी। तुम्हें याद है बहुत दिन हुए एक ऐसी ही

रात थी जब हम यूकिलिप्टस के लंबे पेड़ों की पंक्ति के नीचे धीरे-धीरे चले जा रहे थे।

अशोक : उन सपनों को दुहराने से अब क्या लाभ है, अमिता ? तुम्हारे हृदय की वाणी को मैं एकदम न पढ़ पाता हूँ, ऐसी बात नहीं है; पर मेरा इतना ही कहना है कि अब तुम इतनी न पिघलो। मुझे अंधकार में रहने का अभ्यास है, तुम नवीन उषा-सी यों न मुसकराओ। जब साँझ की किरण-सी तुम लौट जाओगी, तो जानती हो, मेरे मन में कैसी उदासी छा जायगी ? अब तुम पराई निधि हो, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए।

अमिता : तुम्हें पता है अशोक वहाँ अब मेरे लिए जगह नहीं है। तुम्हीं बताओ मैं कहाँ जाऊँ ?

अशोक : हो सके तो वहीं लौट जाओ अमिता ! तुम्हारा कर्तव्य अभी समाप्त नहीं हुआ।

अमिता : कर्तव्य ! इस शब्द को सुनते-सुनते मेरे कान पक गये हैं। कितना अप्रिय शब्द है यह। क्या कर्तव्य का यह अर्थ है कि भावनाओं को कुचल दिया जाय ? क्या इसका यह अर्थ है कि इच्छा न होते हुए भी वही काम किया जाय जिसकी ओर इसका इशारा हो ? मेरे पूछने पर तुमने कहा था सात वर्ष हुए तुम्हारे विवाह को। क्या यह सच है ?

अशोक : तुम्हें मालूम है मुझे झूठ बोलने का अभ्यास नहीं।

अमिता : कौन है तुम्हारी वह दुलहिन ?

अशोक : मेरी दुलहिन तो अमिता है।

अमिता : तो उस दुलहिन का कोई अधिकार नहीं है ? यदि मैं कहूँ कि मैं तुम्हारे साथ रहूँगी तो........?

अशोक : लेकिन, तुम वह अमिता नहीं हो जिससे मेरा विवाह हुआ है। तुम्हें मुझसे कोई भी छीन सकता है, तुम्हारा पति, समाज, मृत्यु। लेकिन मेरी अमिता को कोई छू नहीं सकता। तुम्हारे शरीर के साथ नहीं, तुम्हारी आत्मा के साथ मेरा विवाह हुआ है। वैसी

कामना भी एक दिन मेरे मन में जगी थी, पर उस सपने को तुमने तोड़ दिया....एक झटके से।

अमिता : तो अपना गला घोंटकर मर जाऊँ? तुम्हारी यही इच्छा है?

अशोक : बुरा न मानो तो मैं कुछ कहूँ?

अमिता : बताओ न, मुझसे कहाँ भूल हुई है?

अशोक : सच बात यह है कि तुमने अपने पति को एक दिन भी प्यार नहीं किया, अमिता। जब कभी उस व्यक्ति के व्यवहार में कोई भूल या उपेक्षा हुई, तुमने तुलना की एक दूसरे व्यक्ति से। तुलना करने पर तुमने उसे छोटा पाया। तुम्हें क्षोभ हुआ, विरक्ति हुई, घृणा हुई और यह घृणा रात-दिन बढ़ती गयी। इसका परिणाम दूसरी ओर यह हुआ कि प्यार के अभाव को उसने धन के नशे से, मदिरा के नशे से, वासना के नशे से, भरना चाहा। और अब दोनों के बीच इतनी बड़ी खाई खुद चुकी है कि उसका भरना कठिन है। वह भयंकर घृणा दोनों ओर से अब प्रतिहिंसा का रूप धारण करना चाहती है। वह बदला लेना चाहता है एक दूसरी लड़की से विवाह करके और तुम बदला लेना चाहती हो मेरे साथ रहकर, उस व्यक्ति के साथ रहकर जिसका नाम तुम्हारा पति संभवतः जानता है और जो उसकी आँखों में काँटे-सा खटकता है। तुमने एक दिन भी अपने पति को प्यार नहीं किया।

अमिता : (व्यंग्य और मुस्कान से) ए लेखक जी, बात तो आपकी सच है, पर इसका प्रमाण क्या है? आप यह सब कुछ कैसे जानते हैं?

अशोक : मैं जानता हूँ कि आज तक जो कोई बिगड़ा है, वह केवल इसलिए कि उसे दुनिया में कहीं कोई प्यार करने वाला नहीं था। यदि कोई किसी को प्यार करता है, तो यह हो नहीं सकता कि वह बिगड़ जाय। और अमिता, संसार जो आज बिगड़ा है, उसका मुख्य कारण यह है कि आज वह प्रेम के आधार पर नहीं, घृणा के आधार पर चलाया जा रहा है।

अमिता : मेरी ओर देखो। क्या तुम्हारे पास, इन बड़ी-बड़ी बातों को छोड़कर, मेरे लिए कहने को और कुछ नहीं है!

अशोक : (**कोमलता से**) तुम्हें विश्वास नहीं होगा, पर आज तक मैं तुम्हें जी भर कर देख ही नहीं पाया, मुझसे देखा ही नहीं जाता। तुम्हें आश्चर्य होगा, पर जो बात मेरे जी में है, वह मैं कभी कह ही नहीं पाया, मैं कभी कह नहीं पाऊँगा। तुम्हें यह बात विलक्षण सी लगेगी कि यद्यपि आज तुक मेरे इतने निकट हो, पर मैं अपने सुख के सबसे बड़े पल में सबसे अधिक विह्वल हूँ। इससे अधिक क्या कहूँ ?

अमिता : तब ?

अशोक : तब क्या इतनी बड़ी भावना व्यर्थ जायगी, अमिता ?

अमिता : व्यर्थ क्यों जायगी ?

अशोक : तुम क्या समझती हो अधिकार की जो भावना प्रत्येक पति के हृदय में प्रबल रहती है वह मेरे भीतर नहीं है ? लाख चाहने पर भी जिस समय हमारा एक दूसरे पर अधिकार होगा, उसी समय से जो तुम हो, वह तुम नहीं रहोगी, जो मैं हूँ वह मैं नहीं रहूँगा। सम्भव है अन्य पति-पत्नियों से हम कुछ अच्छे रहें, लेकिन सत्य सत्य है अमिता, और स्वप्न स्वप्न। वे दोनों कभी एक नहीं हो सकते। अब तुम स्वप्न बनकर ही रहो, सत्य न बनो। तुम्हारा जो स्थान मेरे हृदय में है, तुम्हें जो मैंने इतने ऊँचे आसन पर बिठाया है, उसका रहस्य तुम जानती हो ?

अमिता : नहीं जानती, न जाना चाहती हूँ।

अशोक : उसका रहस्य यह है अमिता कि मेरा तुम्हारे ऊपर कोई अधिकार नहीं....वैसा अधिकार जैसा तुम्हारे पति का तुम्हारे ऊपर है। मैं तुम्हें किसी समय भी खो सकता हूँ। अपनी होने पर भी तुम अपनी नहीं हो, इसी से इतना बड़ा आकर्षण है। इसी से, तुम सामान्य न होकर मेरे लिए असाधारण हो। मेरी प्रार्थना है कि तुम पीछे लौट जाओ और अपने पति को प्यार करो। मेरे प्रति जो तुम्हारी

भावना है उसका अपने पति के प्रति तुम्हारी भावना से कोई विरोध नहीं।

अमिता : यह तुम्हारी आज्ञा है ?

अशोक : यह मेरी इच्छा है।

(**अमिता रोती है**)

(**धैर्य बँधाता हुआ**) ये मोती इस तरह बिखेरने के लिए नहीं हैं। संसार में जितने बड़े काम हुए हैं, इन आँसुओं को रोकने से ही हुए हैं। क्या तुम समझती हो, मेरे आँसू नहीं उमड़ते, पर मैंने उन्हें सदा पीछे लौटा दिया है।

(**गंभीरता से**) प्रेम का अर्थ मैंने जीवन में एक ही सीखा है अमिता और वह यह कि जो किसी को प्रेम करता है, वह उसके लिए कुछ करता है, और मैं तुमसे भी काम लूँगा। मेरा असली काम अभी शेष है।

अमिता : रस्सी लाये हो मेरा गला घोंटने के लिए ?

अशोक : (**स्नेह से**) एक दिन तुमने कहा था, ऐसा दीपक जलाना चाहिए कि जब जलाने वाले न रहें, तब भी दीपक जलता रहे। तुम्हें याद है ?

अमिता : हाँ।

अशोक : वही दीपक मैं जलाना चाहता हूँ।

अमिता : ज़रूर जलाओ अशोक, ज़रूर जलाओ।

अशोक : इसके लिए मुझे एक प्राणी की आवश्यकता है।

अमिता : (**भोलेपन से**) उसे ढूँढ़ कर मुझे लाना होगा ?

अशोक : वह तुम्हीं हो।

अमिता : मैं ?

अशोक : हाँ। मैं चाहता हूँ तुम मेरी प्रेरणा बनकर रहो।

अमिता : जितना बड़ा तुम मुझे समझते हो अशोक, उतनी बड़ी मैं नहीं हूँ।

अशोक : आदमी को बड़ा बनाना मुझे आता है। मैं वह मूर्तिकार हूँ जो स्वयं फटे कपड़े पहन कर जीवन बिता देता है; पर अगर पत्थर

में छेनी मार देता है, तो संसार में उस पत्थर की पूजा होने लगती है। जो बात मैं पूछता हूँ, उसका जवाब दो।

अमिता : पूछो।

अशोक : अगर हम कोई काम करेंगे तो तुम्हें प्रसन्नता होगी?

अमिता : (**सिर हिलाकर**) होगी।

अशोक : पहली बात यह है कि तुम हमारे पीछे कभी रोओगी नहीं?

अमिता : (**धैर्य से**) अच्छा नहीं रोयेंगे।

अशोक : (**नटखटपन से**) और तुम हमें कभी याद नहीं करोगी?

अमिता : (**चौंककर**) क्या? यह मुझसे नहीं होगा। और मैं बताए देती हूँ, अगर तुमने मुझसे ऐसे वैसे वायदे कराये, तो मैं यहीं बैठी रहूँगी और कहीं नहीं जाऊँगी।

अशोक : (**स्नेह से**) अच्छा नहीं। अब तुम कब आओगी?

अमिता : (**उदासी से**) क्या पता अशोक, जीवन में अब लौटना हो न हो।

अशोक : ऐसी बात नहीं करते।

अमिता : (**दुःख से**) पहले कट्टर पिता, फिर चरित्रहीन पति, फिर आदर्शवादी प्रेमी! मैंने सबके सामने रो-रोकर अंचल पसारा, पर मेरी बात किसी ने नहीं सुनी।

अशोक : तुमने मेरी बात नहीं समझी, अमिता। प्रेम में शरीर आने से प्रेम मर जाता है।

अमिता : (**शान्त भाव से**) वह बढ़ भी सकता है, अशोक। जहाँ जीवन घायल पंछी-सा रात दिन चीखें मार रहा हो, वहाँ कल्पना की ऊँची उड़ानों में डूबे रहना, जीवन का उपहास करना है।
(**उदासी से**) अच्छा, विदा अशोक!

अशोक : विदा!

प्रेम का बंधन

पात्र

कल्याणी
कुसुम
रेणु
रंजना

प्रेम का बंधन

(कल्याणी के बँगले पर उसकी सखियाँ रेणु, रंजना और कुसुम बैठी हैं)

रेणु : आज बड़ा उदास-सा लग रहा है कल्याणी !

कल्याणी : अभी तो मिस्टर को छोड़े दस मिनट भी नहीं हुए। इतनी देर में ही यह आकुलता।

(हँसती है)

रेणु : नहीं, वह बात नहीं, कल्याणी !

कुसुम : पता नहीं क्या बात है कि मन मेरा भी आज कुछ हँस-सा नहीं रहा। शायद आज की रात ही कुछ ऐसी है। शायद सब गुमसुम बैठे हैं, इसलिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि प्राणी का मन यों ही उदास हो जाता है। लेकिन कोई बात करो जिससे उदासी कटे।

(रंजना से) रंजना, तू कैसे चुप बैठी है ? आज तुझे भी कोई नई शरारत नहीं सूझ रही ?

रंजना : कल्याणी से कहो कुछ सुनावे !

कुसुम : मैं तेरा सितार उठा लाऊँ, कल्याणी ?

कल्याणी : रहने दे कुसुम ! भीतर से ही जब राग नहीं उठता, तो उँगलियाँ क्या करेंगी ?

रंजना : **(उठती हुई)** अच्छा भई, हम तो चले।

कल्याणी : क्यों क्या बात है ?

रंजना : मुझे लगता है मैं बीमारों के बीच फँस गई हूँ।

कल्याणी : अच्छा, मान ले, हम सब बीमार हैं; पर तू तो स्वस्थ है। तू ही कुछ उपाय कर।

रंजना : देख कल्याणी, इलाज तो मैं तुम सब का कर दूंगी, पर फिर तुम सब इतनी नाराज़ हो जाओगी कि अपने बीच कभी उठने-बैठने भी न दोगी !

कुसुम : नहीं, नहीं, इस बात की ज़िम्मेदारी मेरी रही। तुझसे कोई अप्रसन्न नहीं होगा, प्यारी रंजना। आज रात तेरे सब ख़ून माफ़।

रंजना : यह बात है ?

कुसुम : हाँ, बिल्कुल यही बात है।

रंजना : ओ, रेणु !

रेणु : हाँ।

रंजना : इधर तो आ।

रेणु : ले आ गई। क्या बात है ?

रंजना : तेरा मन बहुत उदास है न ?

रेणु : कुछ-कुछ उदास है।

रंजना : (**नटखटपन से**) हाँ, हाँ, बात एक ही है। मेरे हाथ के ऊपर हाथ रख।

रेणु : इससे क्या होगा ?

रंजना : मैं कहती हूँ रख !

रेणु : अच्छा ले।

(**हाथ पर हाथ रखती है**)

रंजना : और कुसुम, तेरा मन भी आज कुछ हँस-सा नहीं रहा।

कुसुम : (**भोलेपन से**) हाँ !

रंजना : (**साँस छोड़कर**) हाँ ! शायद वातावरण का प्रभाव है ?

कुसुम : शायद !

रंजना : तेरा सर है। अपना हाथ ला।

कुसुम : ले।

रंजना : और कल्याणी, आज तेरे भीतर से भी राग नहीं उठता ?

कल्याणी : ऐसा ही तो है। बार-बार क्यों पूछती है ?

रंजना : यदि उठता तो क्या छेड़ती.......विहाग ?

कल्याणी : (हँसकर) नहीं........मिलन-राग !

रंजना : अच्छा, तू भी अपना हाथ ला।

कल्याणी : ले।

रंजना : देखो, तुम सबके हाथ मेरे हाथ में हैं। कहो, रंजना जो बात पूछेगी उसका उत्तर बिना कुछ छिपाये आज हम देंगी।

सब : (हँसती हुई) रंजना जो बात पूछेगी उसका उत्तर बिना कुछ भी छिपाये आज हम देंगी।

रंजना : अच्छा, अपने-अपने प्रेम की कहानी आज तुम सब सुनाओ।

सब : (हाथ झटककर) यह क्या शरारत है ?

रंजना : तुम लोग अपनी-अपनी जगह बैठो ! मेरा पहला प्रश्न रेणु से है।

रेण : लेकिन तुझे मालूम है रंजना, मेरा विवाह हो चुका है।

रजना : मैं जानती हूँ और मुझे यह भी मालूम है कि तुझे झूठ बोलने का अभ्यास नहीं।

रेणु : यह कोई पूछने की बात नहीं है

रंजना : तब बात कोई है ज़रूर। है न ?

कुसुम : बता रेणु, क्या बात है ? यहाँ कोई पराया नहीं है।

रेणु : चारों ओर देख लो, कोई सुन तो नहीं रहा।

कल्याणी : निश्चिंत रह, कोई नहीं सुन रहा।

रेणु : अच्छा।
(रुककर).......एक कोई था।

रंजना : (धीरे से) नाम बताओ।

रेणु : (झुंझलाकर) हम कहते हैं, हम बिल्कुल नहीं सुनायेंगे। हमें जैसे सुनाना आता है वैसे सुन लो, नहीं तो रहने दो।

रंजना : (हँसती है) अच्छा, एक कोई था।

रेणु : वे कहीं बाहर से आये थे और हमारे पड़ोस में ही रहते थे। बाद में मुझे पता चला उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। मा अकेली थी। उन्हें साथ ले आये। वहीं कॉलेज में पढ़ते थे। मा कभी-कभी

आती थी और पढ़ाई के लिये रुपये की आवश्यकता पड़ने पर मेरी मा के पास अपनी कोई चीज़ गिरवी रख जाती थी। घनिष्टता होने पर मेरी भी कई बार उनसे भेंट हुई। एकाध बार बातचीत भी। पर पता नहीं क्या बात थी कि उनके सामने मैं ठीक से नहीं बोल पाती थी।

कुसुम : ऐसी स्थिति में बोलने से अधिक न बोलना सहायक होता है।

रेणु : एक दिन मा ने कहा : तेरे पिता तेरे लिए लड़का देखने गये हैं। उनका मन तो ऐसा है कि न जाने कितने बड़े घर तेरा विवाह करेंगे। मैंने कहा : मा, बाबू जी से कह........। मा बोली : बता-बता क्या बात है ? तू हमारी इकलौती लड़की, इतना पैसा, ऐसी प्रतिष्ठा। ऐसा कौन है जो हमारे घर विवाह करने में गर्व का अनुभव न करे ! आखिर मैंने साहस करके नाम बता दिया। मा एकदम बिगड़ उठी। बोली : तो यह भिखारिन, रुपये माँगने के बहाने तुम पर जाल डालने आती थी। उसकी यह हिम्मत कि हमारे घर सम्बन्ध करने की बात सोचे। मैंने बहुत समझाया : मा उन्होंने मुझे नहीं बहकाया। मेरे ही मन की बात है। पर मा ने विश्वास नहीं किया और मेरा मिलना-जुलना एकदम बन्द कर दिया।

कल्याणी : तब क्या पैसा इतनी बड़ी चीज़ है ?

रेणु : होता ही होगा कल्याणी, पर मन ने नहीं माना। एक रात साहस करके मैं उनसे छिपकर मिली।

कुसुम : क्या कहा उन्होंने ?

रेणु : उस समय वे बड़े गम्भीर थे। बोले : जब तुम्हारे घर वाले हमें इतना छोटा समझते हैं, तो सम्बन्ध की बात कैसे सोची जा सकती है। तुम्हें पाकर मैं अपने को धन्य ही समझता, पर मैं तुम्हारे योग्य सचमुच नहीं हूँ।

रंजना : फिर क्या हुआ।

रेणु : मैंने मा से कहा : तुम जो कहोगी मैं वही करूँगी ? पर मुझे बी० ए० कर लेने दो। बी० ए० करने मैं इलाहाबाद चली आई ! छुट्टियों में लौटी तो मा बोली : प्रभाकर कॉलेज में लेक्चरार हो गया है। और हाँ देख, उसका विवाह हो गया। चल बहू को दिखा लाऊँ। दूसरे वर्ष गर्मियों को छुट्टी में पहुँची, तो पता चला प्रभाकर की बहू के बच्चा हुआ है और वह बहुत प्रसन्न है। प्रभाकर से मिलने पर पाया कि विवाह के उपरान्त वह बात नहीं रहीं थी जो विवाह से पूर्व थी और बच्चे का जन्म होने पर तो उतना भाव भी नहीं रहा था जितना विवाह के समय था।

कुसुम : भाव कुछ तो दृष्टि से दूर होने पर कम हो जाता है और यदि उस भाव को बाँटने वाले मिल जाते हैं तो जिस प्रकार वह उगा था उस प्रकार नष्ट भी हो जाता होगा, क्यों रंजना ?

रंजना : यह कोई नियम नहीं है, कभी-कभी इसका बिल्कुल उलटा भी होता है।

रेणु : मा ने कहा : देख लिया। मैंने उदास होकर कहा : हाँ।

कुसुम : और तब।

रेणु : और तब मेरा भी विवाह हो गया।

कल्याणी : और अब ?

रेणु : (झुँझलाकर) अब क्या ? मैं भी सुखी हूँ। मुझे प्रतिष्ठित घरबार मिला है, सुन्दर पति है, फूल-सा हँसमुख कोमल बच्चा है। मैं बहुत सुखी हूँ ?

कल्याणी : यह तो सारी बात तुमने गद्य कर दी।

रेणु : मेरे पास तो जीवन का गद्य ही है, कल्याणी। कविता कहाँ से लाऊँ ?

रंजना : यह तो ठीक है, पर तुमने कुछ छिपाया है रेणु ?

रेणु : मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ, रंजना। अब रहने दे। मैंने कुछ नहीं छिपाया।

रंजना : नहीं, मर्म कहाँ दुखता है, यह बतलाना होगा।

रेणु : प्रभाकर ने मेरे साथ छल किया, रंजना।

रंजना : छल ! कैसा छल ?

रेणु : वह दिखावा था रंजना। जीवन में वह मुझे कभी नहीं भुला सका। मैं कैसे ही विवाह कर लूं, कैसे ही सुखी रहूँ, इतना ही वह चाहता था।

रंजना : भला आदमी था। इसे तो छल करना नहीं कहते।

रेणु : पर सब कुछ होते हुए भी क्या मैं सुखी हुई ? पति के पास बैठती हूँ तो एक और मुख मुझे पास ही उदित होता दिखाई देता है। बच्चे को खिलाती हूँ तो लगता है कोई छाया-मूर्ति मेरे आस-पास घूम रही है। क्या करूँ मैं ?

रंजना : जीवन में यही तो होता है। जिसे हम चाहते हैं वह हमें नहीं मिलता। जीवन के बहुत बड़े दुःख प्रायः उन लोगों के दिये होते हैं जो हमें बहुत चाहते हैं और वे दुःख आते हैं प्रायः हमारे हित का रूप धारण कर। लेकिन घबरा मत। ऐसी दशा में क्या करना होता है, मैं बतलाऊँगी।

(**रुककर**) हाँ भई, कुसुम तुम्हारी हँसी कैसे छिन गई, वह भी तो बताओ।

कुसुम : मुझे घर जाने को देर हो रही है, आज्ञा मिले ?

रंजना : आज्ञा भी मिलेगी, लेकिन कहानी सुनाने के उपरान्त।

कुसुम : मेरी कहानी अच्छी नहीं है। सुनोगी तो घृणा करने लगोगी।

रंजना : संसार में किसी को अधिकार नहीं है कि वह किसी दूसरे को घृणा करे। सुना।

कुसुम : अच्छा रंजना, विवाहित स्त्रियों को क्या किसी के प्रति आकर्षित होना चाहिए। ऐसा करना पाप है न ?

रंजना : अरी पगली, प्रेम कहीं सोच-समझकर किया जाता है। लेकिन यदि हो जाय तो तू, मैं अथवा और कोई क्या कर सकता है ?

कुसुम : तो रंजना, जब मैं इस घर में आई तो बहुत सुखी थी। मेरी मा धार्मिक वृत्ति की थीं और उनके कुछ संस्कार मेरे भीतर भी थे और जीवन में अपने पति को छोड़कर दूसरे व्यक्ति की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

कल्याणी : हम तो अब भी नहीं समझते कि तुम्हारा मन कहीं और है। उस दिन जब तुम दोनों पार्टी में आये थे तो देखा नहीं, किस प्रकार सबकी आँखें तुम्हारी ओर लगी हुई थीं।

कुसुम : वह केवल बाहर का बंधन है, भीतर का बंधन टूट चुका है।

रेणु : हाँ, केवल वेदी के चारों ओर चक्कर काटने से ही कोई किसी को जीवन भर बाँध कर नहीं रख सकता। प्रेम के बन्धन के लिये कुछ और भी करना पड़ता है।

कुसुम : सच बात यह है कि उन्होंने मेरी कोमल भावनाओं को समझने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया। पैसे कमाने की चिंता में रात-दिन इतने लीन रहते हैं कि थोड़ी देर दो-पहर को खाना खाने आते हैं और फिर रात को ग्यारह बजे लौटते हैं। खाना खिलाने और चारपाई बिछाने का काम तो कोई नौकरानी भी कर सकती थी। इसके लिये विवाह जैसे आडम्बर की क्या आवश्यकता थी ?

रेणु : तू तो बड़ी दुःखी दिखायी देती है, कुसुम।

कुसुम : मुझे बचपन से ही चित्र-कला से प्रेम रहा है। यहाँ आकर भी मैंने बहुत से चित्र बनाये। परन्तु उन्होंने एक चित्र की भी कभी कोई प्रशंसा नहीं की। कला के अनुशीलन को वे समय नष्ट करना समझते हैं।

कल्याणी : समय का सदुपयोग किसमें है ?

कुसुम : चौका ठीक रखने में, ड्राइंग रूम ठीक रखने में, उनके कपड़े ठीक रखने में, धोबी का हिसाब ठीक रखने में, रात को पलंग बिछाकर ठीक रखने में····और क्या ?

(हँसती है)

रेणु : तुझे हँसी आती है ?

कुसुम : हँसूं न तो और क्या करूँ ?

(**रुककर**) और सबसे ऊपर ऐसी पार्टियों में जाने में जहाँ व्यापार सम्बन्धी किसी प्रकार के लाभ की आशा हो सकती है। मेरा तो जी ऐसे स्थानों पर बहुत घबराता है।

रंजना : मुझे एक बात लगती है कुसुम, बुरा न माने तो कहूँ।

कुसुम : कह।

रंजना : यह व्यक्ति तेरी सुन्दरता से लाभ उठाता है।

कुसुम : हो सकता है। एक दिन उन्होंने आकर कहा : मेरा एक पुराना मित्र आ रहा है। मैंने पूछा : कैसे मित्र हैं ? बोले : बेकार-सा आदमी है ! चार पैसे कभी इकट्ठे नहीं कर सका। जैसे तुम्हें चित्र बनाने की झक है, वैसे ही उसे कविता लिखने का पागलपन। चार-छः दिन रहेगा। मुझे कोई विशेष उत्सुकता नहीं हुई।

रेणु : क्यों झूठ बोलती है ?

कुसुम : नहीं, सच कहती हूँ। आये तो आकृति से इतना तो अवश्य लगता था कि कलाकार हैं, पर व्यवहार में हम सब जैसे ही थे, कोई असाधारण बात नहीं थी। अब जब वे यहाँ रहे तो बात करनी ही पड़ती थी। उन्हें पता चला मैं चित्र बनाती हूँ। फिर तो उन्होंने मेरे एक-एक चित्र के गुण-दोष बताए। सच या झूठ, पर उन्होंने कहा : मेरे भीतर प्रतिभा है ! मैं किसी दिन बड़ी कलाकार हो सकती हूँ। यह मैं अच्छा नहीं कर रही कि उस ओर से उदासीन हो रही हूँ। मुझे विश्वास तो नहीं हुआ, पर न जाने क्यों यह सब कुछ बहुत अच्छा लगा....लगा जैसे मेरे मन की बन्द पंखुरियाँ धीरे-धीरे खुल रही हों और उसका पराग धीरे-धीरे उड़कर सारे अंतःकरण को सुगंधित कर रहा हो।

रेणु : यह तो अच्छे लक्षण नहीं हैं।

(**हँसती है**)

कल्याणी : चुप भी रह।

रंजना : इसमें चुप रहने की क्या बात है ? ठीक ही तो कहती है।

(हँसती)

कुसुम : उनके आने के तीसरे दिन मैं एक चित्र बनाने बैठी। बनाते-बनाते मुझे देर हो गई। मुझे लगा मेरे पीछे कोई खड़ा है।

रेणु : कवि जी थे ?

कुसुम : नहीं, मेरे पति थे । उनके मुँह से सहसा निकला : अरे यह तो सुकुमार का चित्र है। मैंने कहा : मैं तो वैसे ही रेखायें खींच रही थी, आ गई होगी उनकी आकृति की झलक। पति बोले : हूँ । पर भूले से हमारा चित्र कभी न बना।

कल्याणी : इस बात को लेकर कोई झगड़ा हुआ ?

कुसुम : उस समय तो कुछ नहीं कहा। उसके दूसरे दिन की बात है। जाड़ों की रात थी । हम लोग बरामदे में ही सो रहे थे। कवि जी कुछ दूर। एक बजे का समय होगा । मेरी नींद उचट गई और मैं उठकर सामने घूमने लगी । देखा, सुकुमार के शरीर से रज़ाई हटकर पलंग से नीचे गिर गई है । पहले तो मैं कुछ देर खड़ी सोचती रही, फिर यह सोचकर कि इन्हें ठंड लग रही होगी; मैंने धीरे पास जाकर रज़ाई उढ़ा दी। जैसे ही मैं लौटी; पता नहीं कैसे मेरे पति ने मुझे देख लिया और मेरा हाथ पकड़कर दूसरी ओर उसी समय ले गए और ज़ोर से एक ठोकर मारी....मैं मारे डर के गिरकर बेहोश हो गई।

कल्याणी : सुकुमार को इस घटना का पता चला ?

कुसुम : नहीं, दूसरे दिन, सबेरे ही वे कहीं चले गये।

रंजना : अब तुम दोनों के कैसे सम्बन्ध हैं ?

कुसुम : बाहर से देखने पर तो ठीक है, पर मन के भीतर वह बात नहीं रही। मन कहता है यह व्यक्ति मेरा पति नहीं हो सकता, ग़लत व्यक्ति से मेरा विवाह हो गया है। मेरे मन में कभी कोई भाव नहीं

था; पर 'तुम सुकुमार को प्रेम करती हो' 'सुकुमार को प्रेम करती हो' इतनी बार दुहराया गया है कि मुझे भय लगता है, यह बात कहीं सच न हो ।

कल्याणी : यह व्यक्ति मनोविज्ञान क्या बिल्कुल नहीं समझता ? ऐसी बातों से तो कोई प्रेम न भी करता हो, तो करने लगे ।

रेणु : और पुरुष की यह कितनी भारी भूल है जो वह यह समझता है कि शरीर को कष्ट देकर वह मन के भीतर बैठे व्यक्ति को बाहर निकाल कर फेंक सकता है ।

कुसुम : पर रेणु, तू व्यर्थ संदेह न कर । मुझे यह सोचना अच्छा नहीं लगता कि मैं अपने पति के अतिरिक्त किसी और का चिंतन करती हूँ ।

रंजना : कल्याणी ।

कल्याणी : हाँ ।

रंजना : अब तेरी बारी है ।

कल्याणी : मैं पूछती हूँ किसी को क्या अधिकार है कि वह अपने दुःख की कहानी से सब को दुःखी करता फिरे ?

रंजना : क्या तू समझती है कल्याणी, हम सब बहुत सुखी हैं ? आज सारी नारी-जाति ही दुखी है । नारी-जीवन का उद्धार कैसे होगा, जब कभी मैं इस बात पर सोचने लगती हूँ, तो मेरा माथा दुखने लगता है ।

कल्याणी : तुझे पता है यह मेरे पति का दूसरा विवाह है ?

रंजना : हाँ, सुना तो यही है ।

कल्याणी : और उनकी पहली पत्नी विवाह के कुछ दिनों बाद से ही बीमार रहने लगी थी ।

कुसुम : हाँ, मैंने अपनी आँखों से देखा था कि वे पीली पड़ गई थीं ।

कल्याणी : और यह बात भी छिपी नहीं है कि मेरे पति तथा उनके माता-पिता ने उन्हें अच्छे से अच्छे डाक्टर को दिखाया और रुपये को पानी की तरह बहाया !

रेणु : इसके लिए तो तुम्हारे पति की प्रशंसा करनी पड़ेगी।

कल्याणी : इतना करने पर भी वे अपनी पत्नी को नहीं बचा सके और न बच्चे का मुंह ही देख सके।

रेणु : भाग्य की बात ही कहनी चाहिए इसे।

कल्याणी : और तब मेरा विवाह हुआ........इस आशा में कि मुझसे उनका कुल चलेगा।

रेणु : यह इच्छा भी स्वाभाविक ही है, यद्यपि युवती पत्नी की मृत्यु के बाद दूसरे विवाह के लिये इतनी जल्दी करने पर सबको आश्चर्य हुआ था।

कल्याणी : विरोध विवाह करने वाले ही को करना था। यह सच है कि माता-पिता की इच्छा वहू को देखने की होती हैं, आँगन में बच्चे देखने की होती है; पर यह समाज भी कम भयंकर नहीं। उसने कहा : यह कैसे हो सकता है कि ऐसा सुन्दर और धनी युवक बिना विवाह के बैठा रहे। उसने इधर-उधर से व्यक्ति जुटाने प्रारंभ किए, उनमें मेरे भोले पिता भी थे। परन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि मेरे पति ने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया।

कुसुम : यह तो कोई तर्क नहीं है कल्याणी, कि यदि एक पत्नी से बच्चा नहीं हुआ तो दूसरी से भी न हो। यदि दोष पत्नी में है........

कल्याणी : (हल्के आवेश में) बच्चा न होने पर दोष सदैव पत्नी में ही समझा जाता है। पर....

रंजना : तू कह क्या रही है, कल्याणी ?

कल्याणी : (आवेश में) मैं भी उसी प्रकार मरूँगी रंजना, जैसे मेरी एक बहिन मरी। मेरा भी अंग धीरे-धीरे झुलसकर वैसे ही राख हो जायगा। परन्तु व्यक्ति सब कुछ समझ-बूझकर दो-दो निर्दोष कोमल जीवनों की निष्ठुर बलि दे सकता है, केवल समाज में अपना दोष छिपाए रखने के लिए....इसका उत्तर किसके पास है, मैं जानना चाहती हूँ।

रंजना : धीरज रख कल्याणी ! इस तरह विचलित नहीं होते । जितना बड़ा दुःख होता है, उतने ही बड़े धैर्य की जीवन में आवश्यकता पड़ती है ।

कल्याणी : नहीं, मैं कुछ न कहूँगी । मैंने कभी कुछ नहीं कहा । सुनती आई हूँ नारी-जाति सहन करने के लिए बनाई गई । मैं सहन करूँगी । पर रंजना मैं बीमार पड़ूँगी, मैं बच नहीं सकती, मैं मरूँगी रंजना ।

रंजना : मरना सभी को है कल्याणी । पर मृत्यु को आलिंगन करने से पहले एक बार जीवन का हँसता मुख देखकर जाना चाहिए । इस प्रकार अस्त्र फेंककर पराजय स्वीकार करने से कोई लाभ नहीं ।

(दूर से बंशी के करुण स्वर सुनाई देते हैं जिनमें सब थोड़ी देर को आत्म-विस्मृत हो जाती हैं)

रेणु : (**सहसा सँभलकर**) अच्छा रंजना, तू बड़ी देर से सबको उपदेश दे रही है, अब अपना रहस्य खोल !

रंजना : मैं समझती हूँ, आज की सभा समाप्त होनी चाहिए ।

रेणु : क्या ! अगर तू ऐसे ही चली गई, तो हम तेरी बोटी-बोटी ले जायँगी । दूसरों के भेद ले लेना और अपना भेद न देना, यह नहीं हो सकता ।

रंजना : मैं तो वैसे ही मरी हुई हूँ, बोटी-बोटी लेकर क्या करोगी ? परन्तु मैं हूँ बहुत अभागी । जो लड़की अपनी मा को मा न कह सके, पिता को पिता कह कर न पुकार सके, उससे अधिक अभागी और कौन होगी ।

रेणु : लेकिन क्यों ?

रंजना : मेरे जीवन में कुछ ऐसा घट चुका है जिससे मेरे माता-पिता मुझे अपनी बेटी कहने में संकोच का अनुभव करते हैं । यदि मैं उनके सामने जाकर खड़ी हो जाऊँ, तो वे मुझसे मिलना पसन्द नहीं करेंगे । मैं समझती हूँ, मेरे आचरण का यह उचित ही दंड है ।

कल्याणी : लेकिन ऐसी क्या बात हुई कि मा-बाप को इतना कठोर होना पड़ा ?

रंजना : बचपन से ही मेरा लालन-पालन बड़े दुलार के साथ हुआ। कुछ बड़ी हुई तो मुझे नृत्य का शौक हुआ। प्रायः ऐसा होता कि ग्रामोफ़ोन पर कोई रेकार्ड चढ़ाकर मैं नाचने लगती। मेरा एक बड़ा भाई था जो कॉलेज में पढ़ता था। पढ़ने में मैं कुछ कमज़ोर थी। भाई के साथ उनका कोई न कोई मित्र प्रायः आया करता था और वे साथ बैठकर पढ़ते रहते। एक दिन मैं पास वाले कमरे में घुंघरू बाँधकर नाच रही थी कि भाई ने आवाज़ दी। मैं वैसे ही चली गई। वहाँ कोई और भी था। देखते ही मैं भाग आई। भाई ने फिर पुकारा। मुझे बुरा लगा। पर जाना पड़ा। उन्होंने कहा : ये मेरे मित्र हैं। कभी-कभी इनसे पढ़ लिया कर। रात-दिन शरारत करती है, पढ़ती-लिखती कुछ भी नहीं। मैंने गुस्से में कहा : बस, इतनी सी बात थी। बाद में पता चला भैया के मित्र एक कवि थे। एक दिन उन्होंने मुझे बताया मेरा इस प्रकार गुस्से में भर कर बोलना, उन्हें बहुत अच्छा लगा। इसमें अच्छी लगने की कौन सी बात थी भला ?

रेणु : यह तो उन्हीं से पूछने की बात थी। किसी में किसी को क्या अच्छा लगता है, यह हम क्या जानें ? क्यों कुसुम ?

कुसुम : हाँ, जी।

(कुसुम के साथ रेणु और कल्याणी हँसती हैं)

रंजना : वे बहुत भले आदमी हैं। बेकार की बातें न सोचो।

कुसुम : सो तो होंगे ही। क्यों रेणु ?

दोनों : हाँ, जी।

(रेणु के साथ कुसुम और कल्याणी हँसती हैं)

रंजना : या तो तुम हँस ही लो या बात ही सुन लो !

कल्याणी : अच्छा भई नहीं। क्यों कुसुम ? क्यों रेणु ?

दोनों : हाँ, जी !

(तीनो फिर हँसती हैं)

रंजना : तो कवि जी श्राने लगे। हम पढ़ते क्या खाक। जितना मन में श्राता उन्हें बनाते, तंग करते।

(गंभीर होकर) पर श्राज श्रपने उस श्राचरण पर खेद होता है।

रेणु : नाम बताश्रो ?

रंजना : श्रच्छा, बदला ले रही है। कमबख़्त कहीं की।

रेणु : नहीं, पहले नाम बताश्रो। तब श्रागे बढ़ने दूँगी। श्रौर देखो, किसी दिन उन्हें दिखाना भी होगा।

रंजना : (गंभीर होकर) दिखा दूँगी।

(सँभलकर) रोना तो यही है रंजना कि श्रादमी पहचानने में मुझसे भूल हो गई। हीरा उठाने चली थी, काँच उठा लाई।

(रुककर)....तो कवि जी पढ़ने के लिये कभी-कभी कोई कहानी-संग्रह या उपन्यास भेज देते थे। उपन्यास उस समय मुझे बहुत श्रच्छे लगते थे। एक दिन जब नौकर ने कहा कि कोई साहब बाहर खड़े हैं, तो मैं गई। देखा कवि जी तो नहीं हैं, कोई दूसरा लड़का है। मैं लौटने लगी। उसने कहा : सुनिए, भाई साहब ने श्रापके लिए पुस्तकें भेजी हैं। मैंने एक पुस्तक खोली। उसमें किसी लड़की का चित्र था। मैंने पूछा : यह चित्र किसका है ? उसने उत्तर दिया : मैं क्या जानूँ ? भाई साहब की कोई परिचिता होगी। मैंने पूछा : क्या श्राप फिर किसी दिन इन पुस्तकों को वापिस लेने श्रा सकेंगे ? उसने कहा : प्रसन्नता से। मेरे मुँह से केवल एक शब्द निकला : धन्यवाद !

कुसुम : श्ररी, कॉलेज के ये लड़के ऐसे ही होते हैं। इन पर जिसने विश्वास किया वह मारा गया।

रंजना : मुझे कवि जी पर बड़ा क्रोध श्राया। सोचने लगी, इस विश्वासघात का तात्पर्य क्या होता है। मैंने निश्चय किया मेरे मन के साथ इस तरह कोई नहीं खेल सकता। किसी को श्रधिकार नहीं है कि मेरे साथ कोई छल करे।

कल्याणी : यौवन के प्रारम्भ में बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है।

रंजना : परन्तु छल होकर रहना था और वह होकर रहा, कल्याणी।

कल्याणी : क्यों, कवि जी ने फिर भुलावे में डाला ?

रंजना : कवि जी ने नहीं, उनके मित्र मनोहर ने। उफ़ !

रेणु : क्यों, तू काँप क्यों उठी ?

रंजना : (स्वस्थ होकर) नहीं, कुछ नहीं।

कुसुम : फिर भी।

रंजना : कवि जी के प्रति तो कोई गहरा भाव नहीं था। कभी-कभी-शरारत कर लेती थी। पर मनोहर को देखते ही मैं कुछ खो सी गई। वह इतना सुन्दर था कि मैं क्या बताऊँ। एक दिन बँगले के पीछे वाले बाग़ में छिप कर बात कर रही थी कि पिता जी ने देख लिया। मेरा बाहर निकलना बंद हो गया।

रेणु : मनोहर ने फिर कोई प्रयत्न नहीं किया ?

रंजना : नहीं, वह एक दिन छिपकर संध्या समय मिला। बोला : आज हमारा फूल मुरझाया हुआ है। मैंने कहा : फूल तो एक न एक दिन मुरझाने के लिए ही होता है। उसने तुरन्त उत्तर दिया : परन्तु जो फूल समय से पहले मुरझा जाता है उसे देखकर दुःख होता है। मैंने सारी स्थिति समझाई, तो कहने लगा : इस अपमान का हम बदला लेंगे। आज रात के बारह बजे तुम इसी बाग़ में मिलना। उसी रात बाग़ की चहारदीवारी को लाँघकर मैं पागल-सी मनोहर के साथ बाहर निकल चली।

कल्याणी : (आश्चर्य से) तू घर से भाग गई ?

रंजना : हाँ।

कुसुम : बाप रे बाप ! तेरा साहस तो कम नहीं है।

रंजना : तब हम लखनऊ आए और एक होटल में रहे।

रेणु : फिर।

रंजना : एक प्रभात में मैंने देखा : मनोहर नहीं है। इसका मुझे संदेह था, पर यह सब कुछ इतनी जल्दी होगा, यह न जानती थी।

कल्याणी : उफ़ !

रेणु : इसके आगे ।

रंजना : इसके आगे की कहानी मेरे अपमानों की कहानी है, मेरे आँसुओं की कहानी, उसे न सुन ।

कल्याणी : आजकल मनोहर कहाँ है ?

रंजना : आगरे में ।

कल्याणी : तुझे कैसे मालूम हुआ ?

रंजना : कवि जी से पता चला ।

कुसुम : कवि जी से ?

रंजना : हाँ ।

रेणु : इस समय मनोहर क्या करता है ?

रंजना : जो जीवन भर किया है, वही ।

कल्याणी : कवि जी को तूने कहाँ पाया ?

रंजना : कवि जी को मैं कहाँ पाती ? उन्होंने ही मुझे ढूँढ़ा । जब मिली तो इच्छा हुई कि ज़मीन में गड़ जाऊँ । परन्तु उन्होंने मुझसे कुछ भी नहीं कहा । उल्टी सान्त्वना देने लगे । तब से उन्हीं के सहारे जीवित हूँ ।

कुसुम : कवि जी से अक्सर मिलना होता है ?

रंजना : अक्सर कहाँ वर्ष में दो-एक बार । वे कभी कहीं रहते हैं, कभी कहीं ।

कल्याणी : अपने साथ तुझे क्यों नहीं रखते ?

रंजना : मैं ही नहीं रहना चाहती !

रेणु : क्यों ?

रंजना : उन्हें प्रेम जो नहीं करती ।

रेणु : फिर किससे प्रेम करती है ?

रंजना : मनोहर को ।

रेणु : पागल हो गई है । जिसने इतना बड़ा छल किया, सर्वनाश किया, दर-दर भटकने के लिए छोड़ दिया, उसे प्रेम ?

रंजना : हाँ रेणु । मन की विवशता का दूसरा नाम ही तो प्रेम है । प्रेम का फंदा कब, कहाँ, किसके गले में, किस तरह पड़ जायगा, कुछ पता नहीं । कुमारी, विवाहिता, सती, अ-सती, यह किसी को नहीं देखता।

कुसुम : यह तो ठीक है । पर क्या तेरे हृदय में मनोहर के प्रति घृणा या प्रतिहिंसा की भावना नहीं जगती ?

रंजना : नहीं कुसुम ! जिस हृदय में प्रेम का आलोक एक बार जगमगा उठता है, उसमें फिर किसी प्रकार का विरोधी या विकारी भाव नहीं ठहर पाता ।

कुसुम : मनोहर के हृदय में भी तो प्रेम जगा था ?

रंजना : नहीं जगा था....इसीलिए तो वह मुझे छोड़कर जा सका । प्रेम किया था मैंने, इसीलिए उसे नहीं भुला सकी । जो प्रेम नहीं करता, वही छोड़कर चला जाता है, रह जाता है वह जो प्रेम करता है ।

कुसुम : फिर यह सब क्या था ?

रंजना : रूप का आकर्षण था, मोह था शरीर का, इससे अधिक कुछ नहीं ।

कल्याणी : पर रंजना, तुझे इस बात से तो कभी-कभी पीड़ा होती होगी कि अनधिकारी को दान दिया ।

ंजना : देने वाला पात्र-कुपात्र को नहीं देखता, कल्याणी । साथी बनने तो वह आया नहीं था । आया था भीख लेने । भिखारी को जो दिया जाता है वह क्या लौटाया जा सकता या उसका हिसाब माँगा जा सकता है । नारी होकर मैं इतनी छोटी भीख न दे पाती, तो क्या नारी थी ? हाँ, एक बात की कसक मन अवश्य रह गई ।

कल्याणी : क्या ?

रंजना : यही कि अपने उपकारी के लिये कुछ नहीं कर सकी ।

कल्याणी : तेरा तात्पर्य कवि जी से है ।

रंजना : हाँ ।

रेणु : कवि जी इतना सब कुछ क्यों करते हैं ?

रंजना : मुझे प्यार करते हैं, इसलिए !

रेणु : उन्होंने तुझसे यह बात कही ?

रंजना : नहीं। वे ऐसे व्यक्ति नहीं हैं। मगर मैं जानती हूँ।

रेणु : तेरे पास इस बात का क्या प्रमाण है ?

रंजना : अरी, तू इतनी साधारण बात भी नहीं समझती। ऐसा त्याग जिसके बदले में व्यक्ति कुछ न चाहे, कोई उसी समय करता है जब वह किसी को प्यार करता है; नहीं तो देने वाला अपने दिये को किसी न किसी रूप में लौटा ही देता है।

रेणु : और वह चित्र ?

रंजना : वह मनोहर की दुष्टता थी। कवि जी को उसका पता तक नहीं।

कुसुम : कभी कवि जो घुमा-फिराकर कोमलता की कोई बात कहते ही होंगे ?

रंजना : कहते कभी कुछ नहीं। उन्हें डर लगा रहता है कि उनका उपकार मुझे कहीं भार-सा प्रतीत न हो। बहुत हुआ तो 'आदर' शब्द का प्रयोग करने लगते हैं।

कुसुम : तुमने पूछा नहीं क्यों करते हैं आदर ?

रंजना : पूछा था एक बार। कहने लगे : तुम्हारा आदर मैं इसलिए करता हूँ कि तुममें चरित्र-बल तो है। अब भला यह किसी की समझ में आने वाली बात है। चरित्र के नाम से मेरे भीतर अब क्या रह गया है, कुसुम ! जो लड़की अपने घर से भाग गई हो, कहेगा उसे कोई चरित्रवान्। पर उनका कहना है कि इतने बड़े विश्वासघात से आहत होकर भी मैंने अपने मन का भाव नहीं बदला, इसी से वे मुझे आदर की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी बातें सुनकर तो मैं लज्जा से और भी पानी-पानी हो जाती हूँ। मेरा कोई तिरस्कार करे, मुझे कोई घृणा की दृष्टि से देखे, यह मैं सहन कर सकती हूँ, पर मुझे कोई आदर की वस्तु समझे, इस पर कैसे विश्वास करूँ और अविश्वास भी कैसे करूँ कुसुम ?

रेणु : यह भी तो पूछती कि उन्हें क्या मिला ?

रंजना : पूछने को ऐसा क्या है जो नहीं पूछा। पर वे मुझे निरुत्तर कर देते हैं और अपने दुःख को बार-बार छिपा जाते हैं।

रेणु : क्या दिया इसका उत्तर ?

रंजना : क्या करेगी जानकर ? सब बातें नहीं जाना करते।

रेणु : नहीं उत्सुकता है, बता दे।

रंजना : हँसकर कहने लगे : मैं जानता था किसी दिन लौटकर तुम्हें मेरे पास आना होगा। कितने बड़े दुःख के भीतर से मैंने तुम्हें प्राप्त किया है ! यह दूसरी बात है कि यह प्राप्ति निषेधात्मक है, पर है तो प्राप्ति ही। तुम्हीं बताओ, यदि तुम किसी की पत्नी होतीं तो क्या मैं तुम्हारी सहायता इसी प्रकार कर सकता था ?

कुसुम : लेकिन रंजना, कोई कितना ही समझावे, जीवन को नष्ट करने के पक्ष में मैं नहीं हूँ और मेरा यह विश्वास है कि सब कुछ नष्ट होने पर नया जीवन फिर प्रारंभ किया जा सकता है।

रंजना : नये व्यक्ति के साथ न ?

कुसुम : हाँ।

रंजना : अच्छा, तू ही बता, मैं क्या करूँ ?

कुसुम : क्यों न दो दुखी जीवन एक हो जायँ ?

रंजना : उस हृदय के हाहाकार को मैं न पहचानती हूँ कुसुम, ऐसी बात नहीं है। दो टूटे हृदय साथ-साथ तो चल सकते हैं पर एक-साथ नहीं चल सकते। प्रेम के जीवन की यह सबसे बड़ी विडम्बना है कि यदि हम किसी को प्रेम करते हैं तो यह बिल्कुल आवश्यक नहीं है कि बदले में वह हमें प्रेम करे ही। प्रेम में सदैव दो और दो चार नहीं होते। मैं अपने दुःख को किसी भी प्रकार के बड़े से बड़े सुख से बदलने के लिए तैयार नहीं।

कल्याणी : इसका तात्पर्य यह हुआ कि नारी केवल सहन करने के लिए बनी है, उसे विद्रोह नहीं करना चाहिए।

रंजना : जहाँ तक मैं समझती हूँ, विद्रोह नारी का स्वभाव नहीं है। वह

सामंजस्य-भावना को लेकर ही आगे बढ़ती है। पर कभी-कभी ऐसी स्थिति खड़ी हो जाती है कि उसे विद्रोह के लिए कटिबद्ध होना पड़ता है। नारी ने जब कभी विद्रोह किया है, उसके लिए उत्तरदायी सदैव कोई दूसरा रहा है। इस रेणु और कुसुम और अपने जीवन को ही देखो। क्या तुम्हारी इच्छा विद्रोह करने की थी ? पर विद्रोह सिखाया तुम्हारे माता-पिता ने, तुम्हारे पति ने, तुम्हारे समाज ने, तुम्हारी परिस्थिति ने। यही होता है, कल्याणी। नारी का शत्रु कभी समाज हो जाता है, कभी उसका पति और कभी उसका प्रेमी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि उसके हृदय का प्यार ही उसका शत्रु बन जाता है जैसे मेरे सम्बन्ध में। पर प्रेम का यह बन्धन ऐसा है कल्याणी कि इससे कोई बच नहीं सकता।

कुसुम : प्रेम के बन्धन को तू इतना महत्त्व देती है, रंजना !

रंजना : हाँ कुसुम।

कुसुम : इसका कारण ?

रंजना : नारी का पूर्ण व्यक्तित्व प्रेम में ही खिलता है, इसलिए।

रेणु : लेकिन मैं ऐसी स्त्रियों को भी जानती हूँ जिन्होंने अपने पतियों को धोखा दिया है। कोर्ट में बहुत से ऐसे मुकदमे रोज़ आते हैं।

रंजना : अवश्य दिया होगा ! पर क्या तू एक ऐसी स्त्री को बता सकती है जिसने अपने प्रेमी को धोखा दिया हो ?

रेणु : इसका रहस्य क्या है ?

रंजना : पति नारी की सम्पूर्ण सिद्धि नहीं हैं। सम्पूर्ण सिद्धि है प्रेमी। पति भी सिद्धि हो सकता है, लेकिन केवल उसी समय जब वह प्रेमी भी हो।

कुसुम : पर इससे तो समाज में बड़ी अव्यवस्था फैलने की आशंका है, रंजना। नारी पति को धोखा देने के लिए विवश हो, यह तो अच्छी बात नहीं है।

रंजना : मैं कब कहती हूँ अच्छी बात है। पर कुसुम, नारी ने जब कभी

पति को धोखा दिया है, तब उसका कारण भी पुरुष ही रहा है।

रेणु : यह मैं नहीं मानती।

रंजना : न मान ! मेरी बात कोई माने, इसके लिए मैं किसी को विवश नहीं करती; परन्तु विवाहित पुरुष इस बात को भूल जाते हैं कि जिसे प्रेम किया जाता है, उसे बार-बार जीतना होता है। यह नहीं कि आपने एक बार हृदय जीत लिया और छुट्टी मिली। कितने पति हैं जो जीवन में नवीनता बनाए रखने के लिए अपनी पत्नी का उसी प्रकार ध्यान रखते हैं जैसे प्रेमिका का रखा जाता है।

कुसुम : यह बात तो तेरी ठीक है, लेकिन किया क्या जाय ?

रंजना : मैं तो सारी समस्याओं का एक ही समाधान समझती हूँ और वह यह कि जो दो व्यक्ति एक दूसरे को सच्चे हृदय से प्यार करते हों; उन्हें प्यार करने का अधिकार दिया जाय। विशुद्ध प्रेम को अनाचार मानना अत्याचार है। इससे बहुतों को बहुत कष्ट होगा, यह मैं जानती हूँ, कुछ की अधिकार भावना को चोट पहुँचेगी, यह भी सत्य है; पर इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

कल्याणी : तो क्या तू समझती है मां-बाप को अपने बच्चे के हित का ध्यान नहीं होता ? क्या समाज कल्याण-कामना से प्रेरित होकर ही बहुत सी बातों में हस्तक्षेप नहीं करता ?

रंजना : जिस कार्य का परिणाम आँसू हो, उसे हितकारी स्वीकार करने में मेरा मन झिझकता है, कल्याणी।

(मोटर के हार्न की दो-तीन बार ध्वनि)

कुसम : शायद वे लेने आ गये।
(रुक कर) लेकिन देखो, आज की बातों का पता कहीं बाहर न चले।

रंजना : कौन कहने जा रहा है ? ये दीवालें कह दें तो कह दें !

(हँसती है)

रेणु : मुझे यह सोचकर हँसी आ रही है कि यदि संसार को इस बात का पता चले कि नारी का आंतरिक जीवन कैसा होता है, तो क्या सोचे ?

रंजना : नारी के जीवन में तो ऐसी एक ही कहानी होती है, रेणु ! पर पुरुष के जीवन में दस हों तो कम, बीस हों तो कम, और सौ हों तो भी कम ! पर यह तो बता इस समय तुझे उदास-उदास सा तो नहीं लग रहा ?

रेणु : (झेंपकर) नहीं ।

(तीनों हँसती हैं)

संदेह का अंत

पात्र

सुधाकर	एक प्रोफ़ेसर
राका	सुधाकर की पत्नी
कुमुदिनी	गर्ल्स कॉलेज की एक अध्यापिका
बेला	कुमुदिनी की छोटी बहिन
नंदा	राका की सहेली
प्रभात	नंदा का भाई
भरोसे और श्यामा	सुधाकर के नौकर

संदेह का अंत

(एक सुन्दर बँगले के एक सुसज्जित कमरे में एक युवती डायरी हाथ में लिए कुछ गुनगुना रही है ।)

राका : प्रेम का घर है दूर........प्रेम का का घर........है, तुम्हीं को बस खुला.....।

प्रभात : **(सहसा चौंकाने वाले स्वर में)** नमस्ते ।

राका : अरे, आओ प्रभात, आओ । नन्दा कैसी है ?

प्रभात : आज पकड़ लिया है दीदी । उस दिन तो झूठ बोलकर जान बचाई थी; पर आज तो अपने कानों से सुन लिया । अब कोई बहाना नहीं चल सकता । आज मैं तुमसे तुम्हारा गीत सुनकर ही मानूंगा ।

राका : कुछ हो भी । मैं कहती हूँ रहने दे ।

प्रभात : बात यह है दीदी.....(**हँसता है**)

राका : कॉलेज में पढ़कर तू बात बनाना सीख गया है ! क्या बात है ?

प्रभात : कवियों का यह स्वभाव होता है कि जब तक घंटों ख़ुशामद न करवा लें तब तक........उसे क्या कहते हैं दीदी 'मूड' नहीं आता ।

राका : तो मैं कवि हूँ ?

प्रभात : कवि ही नहीं गायिका भी ।

राका : विश्वास कर, पत्रों में जिस राका के गीत निकलते हैं वह मेरे ही नाम की कोई दूसरी लड़की है, मैं नहीं ।

प्रभात : होगी, अच्छा अभी जो गीत तुम गुनगुना रही थीं, उसको सुना दो ।

राका : अच्छा सुन ।

प्रभात : लेकिन गाकर ।

राका : (पढ़ती है)

है तुम्हीं को बस खुला, मेरे हृदय का द्वार।
है तुम्हीं को बस खुला अपने हृदय का प्यार।

प्रभात : (टोककर) ऐसे नहीं, स्वर से।

राका : तो तू सुन चुका। जा ! मुझे गाना नहीं आता।

प्रभात : अच्छा नहीं जैसे मन में आवे वैसे ही।

राका : (स्वर से)

है तुम्हारे ही लिए यह कामना का हार !
है तुम्हारे ही लिये उर की व्यथा का भार॥

प्रभात : वाह ?

(राका रुक जाती है)

प्रभात : तुम रुक क्यों गईं ?

राका : या तो वाह वाह ही कर ले या गीत ही सुन ले।

प्रभात : थोड़े और मन से गाओ दीदी ! गान कंठ से नहीं, हृदय से उमड़ना चाहिए।

राका : है तुम्हारे ही लिए मुस्कान का उपहार,
है तुम्हारे ही लिये यह आँसुओं की धार।

प्रभात : ओह ! संगीत जीवन का प्राण है। प्राणों की मस्ती है। तारों की गति में, पवन की हिलोरों में, नदियों की कलकल में, समुद्र की कराह में, मेघों के गर्जन में, बिजली की कड़क में····संगीत कहाँ नहीं है ?

(राका की ओर देखकर)

तुम रुक क्यों गई ?

राका : पहले तू कविता कर ले, फिर सुनना।

प्रभात : बात यह है दीदी कि उस स्वर-लहरी में मैं बह गया।

राका : (गाती है)

अब न जीवन की रहे, नै या कभी मँझधार,
हे खिवैया, ले चलो इस पार या उस पार।
हैं तुम्हीं को.......॥

प्रभात : वाह ! भावुकता और मधुर स्वर का ऐसा संयोग।

राका : (मज़ाक सा बनाती हुई) कोकिल की कूक में, पपीहे की पी-पी में, निर्झर की झर-झर में, पत्रों के मर्‌मर् में, संगीत कहाँ नहीं है।

प्रभात : रमणी के कंठ में........

राका : (बात काटती हुई) बस....बस....बस ! तू भी किसी कवि से कम नहीं है। एक कवि होते हैं जो छन्दों में लिखते हैं, दूसरे जो गद्य में ही कविता करते हैं। तू वैसा ही कवि है।

प्रभात : बात करते समय मैं कुछ बह जाता हूँ दीदी, पर मैं बुरा आदमी नहीं।

राका : मैंने कब कहा रे कि तू बुरा आदमी है। पर भावुक तू कुछ अधिक ज़रूर है।

प्रभात : दीदी तुम जानती हो कि मैं तुम्हारा कितना सम्मान करता हूँ। मैं अपनी सगी बहिन को भी उतना नहीं मानता जितना तुम्हें।

राका : क्यों, नंदा में क्या कमी है ? तुझे स्नेह नहीं करती ?

प्रभात : करती है दीदी, बहुत करती हैं। पर रात-दिन फिलासफ़ी की पुस्तकें पढ़ती रहती है ! मुझे फ़िलासिफर अच्छे नहीं लगते दीदी, कवि अच्छे लगते हैं। मुझे लगता है दीदी, जीवन का सत्य जैसे कवियों ने ही पहचाना है।

राका : हूँ !

प्रभात : तुम्हारे पास बैठना मुझे बहुत अच्छा लगता है दीदी ! यदि मैं कभी कभी तुम्हारे पास बैठ जाया करूँ, तो तुम्हें बुरा लगेगा ?

राका : किसी बहिन को अपने भाई के पास बैठना बुरा लगता है, रे ?

प्रभात : ओह ! आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ दीदी। मेरी अच्छी दीदी !
(राका का पति सुधाकर द्वार से चलकर आता है। पदचाप सुनाई देती है।)

सुधाकर : (कुछ झुँझलाहट में) क्या हो रहा है ?

राका : ओह ! (सँभल कर)

इसका नाम प्रभात है। यह मेरी सखी नन्दा का भाई है। कवि तो नहीं, पर कवि-हृदय इसने पाया है। मुझसे मेरा एक गीत सुन रहा था।

(प्रभात से) प्रभात ! ये मेरे स्वामी हैं।

प्रभात : नमस्ते ।

सुधाकर : नमस्ते ! आप क्या करते हैं ?

प्रभात : जी, मैं तो कॉलेज में पढ़ता हूँ।

सुधाकर : ओह !

प्रभात : अच्छा, मुझे आज्ञा मिले फिर कभी आऊँगा।

सधाकर : अच्छी बात है।

(प्रभात जाता है)

सुधाकर : (राका से) राका।

राका : जी !

सुधाकर : मैंने तुम्हें पुकारा। मेरी आवाज़ तुम्हारे कानों में नहीं आई ?

राका : सच, मैंने तो नहीं सुनी।

सुधाकर : सुनतीं कैसे ? एक साथ दो आवाजें आज तक कोई सुन पाया है ?

(व्यंग्य से) मुझे कवि अच्छे लगते हैं। जीवन का सत्य कवियों ने ही पहचाना है। तुम्हारे पास बैठना मुझे बहुत अच्छा लगता है। यदि मैं कभी-कभी तुम्हारे पास बैठ जाया करूँ तो तुम्हें बुरा तो नहीं लगेगा ? आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ। जहाँ एक ओर से प्रेम की कविता पढ़ी जाय और दूसरी ओर से ऐसी मीठी बातें सुनने को मिलें, वहाँ हमारे पुकारने का, एक साधारण सम्बोधन का, क्या मूल्य है ?

राका : आज तुम झगड़ा करने पर क्यों उतारू हो ? मुझे प्रसन्नता हुई कि चलो तुम मज़ाक करना तो सीख गए।

सुधाकर : तुम एक गम्भीर स्थिति को मज़ाक समझती हो।
राका : कैसी गम्भीर स्थिति ?
सुधाकर : यह वही तो प्रभात है जिसकी प्रशंसा तुम कई बार कर चुकी हो। ऐसे ही शुरू हो जाता है।
राका : क्या शुरू हो जाता है ?
(**समझ कर**) ओह ! (**हँसती है**)
यह बात है ! अच्छा हुआ कि तुमने हमारी बातें सुन लीं। पर इस प्रकार प्रसंग से उखाड़ कर किसी भी वाक्य का कुछ से कुछ अर्थ हो सकता है। वह लड़का, हृदय से अत्यन्त सरल है। जैसी बातें तुम सोचते हो, वैसी बातों की वह कल्पना भी नहीं कर सकता।
सुधाकर : इतना तो तुमने ही स्वीकार किया कि उसे कवि-हृदय प्राप्त है।
राका : हाँ !
सुधाकर : यानी भावुक हैं।
राका : जी, हाँ।
सुधाकर : और नवयुवक हैं।
राका : हाँ, हाँ। लेकिन इससे ?
सुधाकर : मुझे यह मिलना-जुलना पसन्द नहीं।
(**दरवाजे से आवाज़ आती है**)
कुमुदिनी : मैं अन्दर आ सकती हूँ ? क्या हो रहा है ?
सुधाकर : (**स्वर बदल कर**) इनका नाम कुमुदिनी है, राका !
राका : नमस्ते !
सुधाकर : यह मेरी पत्नी राका हैं।
कुमुदिनी : नमस्ते।
सुधाकर : राका यह अभी-अभी यहाँ के गर्ल्स कालेज में अँग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर नियुक्त हुई हैं। हिन्दी से इन्हें बहुत अनुराग है। बहुत सुन्दर नृत्य करती हैं।
कुमुदिनी : कॉलेज में हम दोनों साथ ही पढ़ते थे।

सुधाकर : यह मैं भूला नहीं हूँ।

राका : सौभाग्य की बात है। आप बहिन जी, बैठिए। (**नौकरानी को पुकारती है**) श्यामा !

श्यामा : जी, बहू जी !

राका : चाय !

कुमुदिनी : चाय मैं नहीं पीऊँगी।

(**सुधाकर से**) आप कितनी देर में आ रहे हैं ?

सुधाकर : हो सकता है आज मैं न आ सकूँ।

कुमुदिनी : वाह ! यह कैसे हो सकता है। आपने तो वादा किया था, आज शाम को आप हमारे यहाँ अवश्य आवेंगे।

राका : (**पति से**) आपको घर पर कोई काम तो है नहीं।

(**कुमुदिनी से**) आप यहीं चाय पी लेतीं और यहीं से दोनों साथ चले जाते।

कुमुदिनी : ओह, अभी मुझे बहुत काम है।

(**चलने लगती है**)

(**सुधाकर से**) आप जल्दी आवेंगे ?

(**चली जाती है। सुधाकर चुपचाप खड़ा रहता है**)

राका : आप तो सुबह कह रहे थे रात को एक सभा में भाषण देने आपको जाना है। अच्छा बतलाइए तो, जिस अधिकार से यह स्त्री बात कर रही थी यदि कोई बाहर का व्यक्ति होता तो हम दोनों में से किसे गृह की स्वामिनी समझता ?

सुधाकर : पर मैंने तो उसे इस तरह बातें करने के लिये कहा नहीं।

राका : घनिष्ठता होते ही ऐसे अधिकार व्यक्ति स्वयं ले लेता है। कुछ भी हो, पर इतना तो आप भी जानते हैं ?

सुधाकर : क्या ?

राका : कि यह स्त्री कलाकार है ?

सुधाकर : हाँ !

राका : और भावुक है ?
सुधाकर : हाँ !
राका : और युवती है ?
सुधाकर : हाँ !
राका : और सुन्दरी भी है ?
सुधाकर : हाँ हाँ....लेकिन इससे ?
राका : मुझे यह मिलना-जुलना पसन्द नहीं ।
सुधाकर : लेकिन राका !
राका : लेकिन क्या, एक बात पूछ सकती हूँ ?
सुधाकर : पूछो !
राका : आप कैसे जानते हैं कि यह नृत्य बहुत सुन्दर करती है ?
सुधाकर : कोई कला सीखता है, तो उसका प्रदर्शन कभी न कभी होगा ही।
राका : ठीक, और यह भी हो सकता है कि वह प्रदर्शन केवल एक ही व्यक्ति के सामने हो, यानी एक व्यक्ति नृत्य कर रहा हो और दूसरा देख रहा हो ।
सुधाकर : यदि ऐसा भी हो, तो क्या हानि है ? उसका यह अर्थ तो कदापि नहीं कि उसके पीछे कोई बात ही हो ।
राका : पर उसमें से एक कविता पढ़ रहा हो और दूसरा सुन रहा हो तब शायद कोई बात हो जाती है........क्यों ?
सुधाकर : लेकिन राका सुनो तो....
राका : (हँसती है) राका को कुछ नहीं सुनना । जो कहना है अपने मन से कहिए । मन साफ़ रखना चाहिए । अपने लिये भी और दूसरों के लिये भी ।

(आवाज़ आती है)

प्रभात : दीदी !
राका : (प्रसन्नता) प्रभात है ।
सुधाकर : (खिन्न होकर) फिर प्रभात !
राका : अभी आपने क्या कहा था ? भूल गये ?

प्रभात : (प्रवेश करके) दीदी ! नन्दा बहिन ने कहा है आज वे तुम्हारे साथ चित्र देखेंगी । 'शादी की बात' चल रही है ।

राका : लेकिन....

प्रभात : नन्दा ने कहा है मैं आपको अपने साथ ही ले आऊँ ।

सुधाकर : लेकिन आज तो इन्हें....

राका : (बात काट कर) तुम जाओ प्रभात ! मैं अभी इन्हें चाय पिलाकर श्यामा को तुम्हारे घर भेजूंगी । मैं आ सकूंगी या नहीं तभी कहला भेजूंगी ।

(प्रभात जाता है)

सुधाकर : (घूमता हुआ धीरे धीरे) मेरा तो विचार है....

राका : कि यह लड़का मुझे प्रेम करता है ।

सुधाकर : और....

राका : और इसलिए बुलाने आया था कि मुझे लेकर भाग जाये ? क्यों ?

सुधाकर : लेकिन तुमने देखा नहीं वह कैसी कोमल दृष्टि से से तुम्हें देख रहा था ।

राका : तुमने यह भी तो सुना होगा कि उसने आते ही मुझे दीदी कहा ।

सुधाकर : (अत्यन्त तीखे व्यंग्य के साथ) अरे, आजकल के लड़कों का मुझे बिल्कुल इत्मीनान नहीं । ये दीदी और बहिन जी शब्द उनके लिये एक आड़ का काम करते हैं ।

(भरोसे प्रवेश करता है)

भरोसे : बहू जी, एक नई बीबी जी साहब को पूछ रही हैं ।

राका : (भारी स्वर में) जा, यहीं बुला ला ।

बेला : नमस्ते....भाई साहब !

सुधाकर : (प्रसन्न होकर) नमस्ते ! राका, यह बेला है । बड़ी नटखट है । कुमुदिनी की छोटी बहिन । उसी कॉलेज में पढ़ती है । बहुत अच्छा गाती है ।

बेला : जीजी ने कहा है देर हो रही है । आप वहीं चाय पियें । मैं आपको लिवाने आई हूँ ।

सुधाकर : (सोचता है) अच्छा बेला, तुम चलो मैं अभी थोड़ी देर में आऊँगा। अपनी जीजी से कहना कि वे चाय पी लें।

राका : चाय तो यहाँ भी तैयार है। बेला बहिन तुम यहीं बैठो, चाय पीके जाना। ये अभी जायँगे।

सुधाकर : हाँ हाँ ! बेला तुम चाय पीओ न ? राका कह रही है।

बेला : जीजी ने कहा था, मैं जल्दी जवाब लेकर लौटूँ।

(जाती है)

राका : कहिये !

सुधाकर : क्या होना चाहिए ? (घूमता है)

राका : मेरा तो विचार है........

सुधाकर : क्या ?

राका : कि यह लड़की तुम्हें प्रेम करती है।

सुधाकर : नहीं, नहीं, यह तुमने कैसे जाना ?

राका : तुमने देखा नहीं, वह कितनी कोमल दृष्टि से तुम्हें देख रही थी।

सुधाकर : लेकिन तुमने सुना नहीं....उसने आते ही मुझे भाई साहब कहा।

राका : (व्यंग्य से) उहूँ ! आजकल की पढ़ी-लिखी लड़कियों का मुझे कोई इत्मीनान नहीं। ये भाई साहब और भैया शब्द उनके लिए एक आड़ का काम करते हैं।

सुधाकर : तुम तो राका व्यंग्य करती हो। मेरा तात्पर्य यह नहीं था।

राका : जी ! पुरुषों के तात्पर्य को स्त्रियों ने सदा से ठीक समझा है। पुरुष चाहे कितना ही पढ़ा लिखा हो, पर स्त्रियों के सम्बन्ध में उसके संस्कार उसके दादे-परदादे के संस्कार ही रहते हैं।

सधाकर : पुरुष जितनी दौड़ धूप करता है वह किसके लिए ? सृष्टि में जो कुछ सुन्दर है, वह निश्चित रूप से नारी को प्रसन्न करने के लिये ही तो। ये सुन्दर भवन, ये मूल्यवान शृंगार प्रसाधन, विज्ञान की शक्ति से खड़े किये हुए ये सुख, किसके लिये हैं ?

राका : और नारी भी तो किसी को प्रसन्न करने के लिये है ?

सुधाकर : ऐं !

राका : ऐं क्या ? कभी आपने सोने के पिंजड़े में बन्द पक्षी की छटपटाहट देखी है ?

सुधाकर : देखी है ।

राका : कैसी लगती है ?

सुधाकर : तब तुम्हारा यह मतलब है कि पुरुष ने नारी को बंदिनी बना रखा है ?

राका : बंदिनी ? बंदिनी ही नहीं, उसकी आत्मा को भी कुचल दिया है। तुम्हारे लिये हम जंगल-जंगल घूमीं । जब तुम हमें छोड़कर चले गये तो जीवन भर तुम्हारे लिये रोती रहीं । तुमने हमें चिताओं पर जीता जला दिया । और आज भी हमारी यह दशा है कि यदि वैसे ही किसी की ओर मुस्करा दें, किसी के पास खड़ी हो जायें तो तुम समझते हो, हम उससे प्रेम करती हैं । छिः नारी के हृदय को जीतना तुम इतना सरल समझते हो ?

(आवाज़ आती है)

बेला : भाई साहब ?

सुधाकर : कौन ? बेला, आओ ।

बेला : जीजी ने यह चिट्ठी आपको दी है । नमस्ते ।

(जाती है)

राका : क्या लिखा है ?

सुधाकर : **(जल्दी जल्दी पढ़ता हुआ)** कुछ नहीं, कोई खास बात नहीं, तुमसे उस बात का कोई मतलब नहीं ।

(पत्र फाड़ देता है)

(आवाज़ आती है ।)

प्रभात : दीदी ?

राका : **(गंभीर स्वर में)** कौन प्रभात ? आओ ।

सुधाकर : इस पैकेट में क्या है ?

प्रभात : साड़ी है ।

सुधाकर : किस लिये ?

प्रभात : पसन्द कराने के लिये लाया हूँ।

सुधाकर : कैसी पसन्द ?

प्रभात : (सकुचाता हुआ) जी मैं मुँह से आगे कुछ नहीं कह सकता। इसी के भीतर एक चिट्ठी है। उसी में सब कुछ लिखा है। अच्छा नमस्ते !

(जाता है)

सुधाकर : देखें, इस पैकेट को ?

राका : पर क्यों ?

सुधाकर : अरे भाई देखें, इसमें क्या है ?

राका : सुन तो लिया, साड़ी है। क्या देखेंगे ?

सुधाकर : कैसे साड़ी है हम भी तो जानें।

राका : नई साड़ी है, प्रभात की लाई हुई है, मेरी पसन्द के लिये है। जो विशेष बात है वह पत्र में लिखी होगी।

सुधाकर : ओह ? इतनी जल्दी भेंटें भी आने लगीं। अच्छा पत्र खोलो।

राका : (रुक रुक कर) कुछ नहीं, कोई ख़ास बात नहीं, तुमसे उसका कोई संबंध नहीं। वैसे ही है।

सुधाकर : नहीं, दोनों चीज़ें मैं देखूँगा।

राका : (कुछ उत्तेजित होकर) नहीं, आप नहीं देख सकते।

सुधाकर : मैं कहता हूँ मेरे घर में यह नहीं चल सकता।

राका : क्या नहीं चल सकता ?

सुधाकर : यह नाटक....जो खेला जा रहा है।

राका : आप भूल करते हैं। यह घर आप का ही नहीं, मेरा भी है। मैं तो क्रोध करना नहीं चाहती। नारी के क्रोध करने से घर बिगड़ जाता है। लेकिन मैं भी जो अपनी आँखों से देख रही हूँ वह भी नहीं हो सकता।

सुधाकर : कॉलेज के इस लड़के के चक्कर में पड़कर आज तुम्हारा यहाँ तक साहस बढ़ गया कि तुम मेरा सामना करो।

राका : आप ऐसी बात करते हैं तो मेरे तन-बदन में आग लग जाती है। क्या मतलब है मेरा उससे ? लेकिन यह आपकी समझ में आता है कि आपके पास किसी नारी का पत्र आये तो उसे आप मुझे बिना दिखाये फाड़ दें और मेरे पास जो पत्र आये उसे मुझे आपको अवश्य दिखाना होगा। आप का रहस्य रहस्य है, मेरा रहस्य कोई रहस्य नहीं। याद रखिये, चौकीदारी होगी तो दोनों के ऊपर होगी, नहीं तो किसी के ऊपर नहीं।

सुधाकर : लेकिन इन्हें दिखाने में तुम्हारी हानि क्या है ?

राका : यह मेरे विश्वास का अपमान है, मेरे प्रेम का अपमान है।

सुधाकर : लेकिन दिखाने से प्रेम और विश्वास दोनों बढ़ सकते हैं। न दिखाने से दोनों ही टूट सकते हैं।

राका : अपने विश्वास और प्रेम के लिये मैं कोई प्रमाण देने को तैयार नहीं।

सुधाकर : इस हठ का परिणाम भयंकर हो सकता है, राका ! समझ लो।

राका : समझ लिया।

सुधाकर : (ज़ोर से) दिखाओ।

(हाथ से पैकेट छीनता है)

राका : (चिल्लाकर) नहीं।

सुधाकर : दिखाओ।

(सुधाकर धक्का देता है। राका गिर पड़ती है)

राका : (कराहती हुई) हाय !

(एक कोने में)

भरोसे : क्यों री श्यामा तुझे दो मिनट के काम के लिये भेजा जाता है और घंटे भर में लौटती है ?

श्यामा : चल मरे, इसका हिसाब तुझे देना होगा ? मैं बहू जी की नौकरानी हूँ या तेरी ?

भरोसे : आज नहीं तो दो दिन बाद तुझे मेरा हुकुम मानना होगा। जहाँ

बिठाऊँगा, वहाँ बैठना होगा, जहाँ भेजूँगा वहाँ जाना होगा, जो कहूँगा वह करना होगा।

श्यामा : तेरा सिर फिर गया है क्या ?

भरोसे : तुझे कुछ नहीं मालूम है श्यामा ?

श्यामा : (मुँह बनाती हुई) नहीं, मुझे कुछ नहीं मालूम। तुझे क्या मालूम है, सुनूँ तो ?

भरोसे : बाबू जी कह रहे थे कि वह तेरा व्याह मुझसे ठीक कर देंगे।

श्यामा : पर मैं तो तुझसे ब्याह नहीं करने की।

भरोसे : फिर किससे करेगी ?

श्यामा : पहले सोचती थी किसी सिपाही से करूँगी। वह किसी भी ताँगे वाले को रोककर मुझे जहाँ चाहूँगी वहाँ घुमावेगा। पर अब सोचती हूँ किसी से न करूँगी।

भरोसे : क्यों ?

श्यामा : अरे, आदमी आदमी सब एक से। औरत को गुलाम बना के रखते हैं, पैर की जूती समझते हैं और इसकी वजह यह है बुद्धू कि आदमी कमाता है। जो कमाता है वह हुकुम चलाता है। मैं टहल करूँगी, कमाऊँगी, अपनी नींद सोऊँगी, अपना जगना जगूंगी। शादी करके तुझ जैसे गधे की गुलामी न करूँगी।

भरोसे : मैं भी तो सोचूँ श्यामा कि तू बड़ी अकलमन्द है।

श्यामा : अब तू उलझता ही रहेगा कि कुछ काम करने देगा।

भरोसे : तू मान जाय श्यामा तो मेरी तेरी जोड़ी बहुत ठीक रहेगी।

श्यामा : अच्छा चल, बाबू जी के पास चल। तू मुझे बहुत तंग करने लगा है।

(हाथ पकड़ कर खींचती है)

भरोसे : नहीं, आज बाबू जी गुस्से हैं, मैं नहीं जाऊँगा।

श्यामा : (खींचकर) चल !

भरोसे : नहीं चलूँगा।

श्यामा : चल !

(सहसा पीछे से आकर)

सुधाकर : क्या शोर मचा रखा है ?

श्यामा : (हाँफती हुई) बाबू जी ! बाबू जी ! यह मेरी जान के पीछे क्या झंझट लगा रखी है। भरोसे कहता है बाबू जी ने उससे मेरी शादी पक्की कर दी है। दो दिन बाद जहाँ बिठायेगा, वहाँ बैठना होगा, जो कहेगा वह करना होगा। शादी से पहले जब इतनी पहरेदारी करता है बाबू जी, तो शादी के बाद तो यह मेरी जान ही ले लेगा। इससे मेरा पिंड छुड़ाइये, बाबू जी !

सुधाकर : औरत का जन्म लिया है तो श्यामा शादी तो करनी ही होगी। लड़का क्वारा रह सकता है, लड़की नहीं। लड़की क्वारी रहे तो सब नाम धरते हैं। ग़रीब हो, अमीर हो, लड़की बिन ब्याही नहीं रह सकती।

श्यामा : यह बात तो ठीक है, बाबू जी ! पर जिसके साथ बाँधा जाय, वह समझदार तो हो। बड़े लोगों का तो बँगले में बैठकर काम चल सकता है, पर हम गरीबों को चार घर काम करना पड़ता है, तब दो जून रोटी मिलती है। मगर घड़ी-घड़ी हम पर चौकीदारी हो, मिलट-मिलट का हिसाब हमें देना पड़े, तो जिन्दगी की गाड़ी कैसे चले। अपने आदमी पर बिसबास करना होता है, बाबू जी।

सुधाकर : अच्छा, तुम लोग जाओ।

(स्वगत) चौकीदारी....हिसाब रखना....अपने आदमी पर बिसबास !

मुझसे तो इस गँवार नौकरानी में ही अधिक समझ है।

(नंदा और कुमुदिनी प्रवेश करके)

कुमुदिनी : किसी नाटक का रिहर्सल हो रहा है ?

नंदा : भई, हम तो तंग आ गये।

सुधाकर : अरे ! आओ ! आओ ! आज नंदा मुझसे बहुत अप्रसन्न हो रही होगी, मैं जानता हूँ।

नंदा : नदा क्यों अप्रसन्न होगी ?

सुधाकर : तुम्हारी पिक्चर मारी गई। तुम 'शादी की बात' में जाने वाली थीं न।

नंदा : अब हम दूसरी पिक्चर देखेंगे। क्यों कुमुदिनी बहिन ?

कुमुदिनी : हाँ, भई।

सुधाकर : दूसरी पिक्चर कौन सी ?

नंदा : तुम्हीं बताओ कुमुदिनी।

कुमुदिनी : नहीं भई ! तुम्हीं बताओ।

नंदा : नई पिक्चर का नाम है 'सगाई की रात'

सुधाकर : 'सगाई की रात' तो कोई पिक्चर नहीं।

नंदा : अब कुमुदिनी इन्हें समझाओ।

कुमुदिनी : नहीं भई, तुम्हीं समझाओ।

नंदा : बात यह है महाशय कि हमने अर्थात् मैंने और कुमुदिनी ने यह निश्चय किया है कि प्रभात और बेला को चिर-बंधन में बाँध दिया जाय। वे चुप-चुप पत्र-व्यवहार कर रहे थे और छिप-छिप कर मिलते थे। आज उनकी सगाई की रात है !

सुधाकर : क्या ?

नंदा : क्यों आपको आश्चर्य क्यों हुआ ?

सुधाकर : कुछ नहीं....मैं यही सोच रहा था कि इतनी बड़ी बात हो गई और हमें पता तक नहीं चला।

कुमुदिनी : यह बात पुस्तकों में जो नहीं लिखी।

नंदा : तुम्हें बुलाया तो था। सोचा दो आदमी हैं, एक कुमुदिनी का हाथ बँटायेगा, दूसरा मेरा। पर न जाने आज तुम लोग क्या कर रहे हो कि घर से हिलने का नाम ही नहीं लेते।

कुमुदिनी : मैं चलती हूँ नंदा बहिन। तुम राका को लेकर आना। नमस्ते।

(जाती है)

सुधाकर : तो ये बेला और प्रभात इसीलिए दौड़-दौड़ कर बुलाने आ रहे थे।

नंदा : आजकल सब काम अपने हाथ से करने पड़ते हैं। नौकर मिलना और रखना दोनों कठिन है। पर राका कहाँ है ?

सुधाकर : अपने कमरे में।

नंदा : प्रभात के हाथ पसंद करने को जो साड़ी भिजवाई थी वह तो लौटा दी होती। रानी जी के लिये भेंट तो थी नहीं।

सुधाकर : तुमने भिजवाई थी ?

नंदा : नहीं काले चोर ने भिजवाई थी। क्यों क्या हुआ ? अभी उसके पैसे भी नहीं गये।

सुधाकर : कुछ नहीं, कुछ नहीं। तुम चलो। हम दोनों अभी आते हैं।

नंदा : देखिए जल्दी आइए।

(जाती है)

(राका के पास जाकर)

सुधाकर : राका, तुमने एक प्रसन्नता की बात सुनी ?

राका : मुझे अब किसी बात से प्रसन्नता नहीं होती।

सुधाकर : अभी नंदा आई थी।

राका : आई होगी !

सुधाकर : अरे प्रभात और बेला की आज सगाई है।

राका : ....

सुधाकर : मुझे क्षमा करो, राका !

राका : मैंने कुछ कहा है ?

सुधाकर : मैं बहुत लज्जित हूँ। मेरी भूल थी। मैं जानता हूँ मैं तुम्हें ठीक से नहीं समझ पाया। पुरुष का हृदय ऐसा होता है कि जिसे प्यार करता है, उसे चारों ओर से जकड़ कर रखना चाहता है ! बहुत प्यार में ही तो बहुत संदेह होता है, राका।

राका : इस अभिनय की क्या आवश्यकता है ?

सुधाकर : तब तुम्हारा क्रोध अभी कम नहीं हुआ। तुम तो ऐसी कभी न थीं।

राका : यह प्यार अब किसी और को जताना।

सुधाकर : देखो यह रूठने का समय नहीं है। प्रभात की सगाई में चलना है।

राका : लेकिन आप को मालूम है....प्रभात का हृदय कवि का हृदय है.... वह भावुक है, युवक है।

सधाकर : (हँसता है) और तुम्हें प्रेम करता है।

राका : अब मैं....

सुधाकर : अच्छा, नहीं नहीं। पर तुम्हारा नया गीत मैंने तो अच्छी तरह सुना भी नहीं।

राका : हम नहीं सुनाते।

सुधाकर : नहीं सुनाओगी ? (उदास होता है)

राका : अच्छा उदास न हो, सुनो।

है तुम्हीं को बस खुला
मेरे हृदय का द्वार,
है तुम्हीं को बस खुला
अपने हृदय का प्यार।

है तुम्हारे ही लिए
यह कामना का हार,
है तुम्हारे ही लिए
उर की व्यथा का भार।

है तुम्हारे ही लिए
मुस्कान का उपहार,
है तुम्हारे ही लिए
यह आँसुओं की धार।

सुधाकर : तुम राका इतना भावपूर्ण लिखती हो और इतना अच्छा गाती हो।

राका : तुमने इन प्राणों की पुकार कभी सुनी ही नहीं। रात-दिन काम में व्यस्त रहते हो या फिर बाहर घूमते हो।

सुधाकर : लगता है आज मैंने एक नवीन लोक के दर्शन किये हैं, नवीन रहस्य को पहचाना है, नवीन जीवन पाया है।

राका : और प्रभात !

सुधाकर : (हँसता है) अच्छा भई, हम हार गए, तुम जीत गईं।

राका : अरे, मन करता है तुमसे ज़िन्दगी भर न बोलूं, पर यह संबंध ही ऐसा है जिसमें हार में तो हार है ही, जीत में भी हार है। पर आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, सचमुच बहुत प्रसन्न....

(गाती है)

अब न जीवन की रहे
नैया कभी मँझधार,
हे खिवैया ले चलो
इस पार या उस पार !

जीवन साथी

पात्र

प्रतिमा	उलफ़तराय ‘उलझन’
अर्चना	कमलापति
कामना	जीवन
माधुरी	एक अन्य यवक

जीवन साथी

(एक कमरे में प्रतिमा है। पास वाले कमरे में कुछ नवयुवक, जो बाहर से आये हैं, बैठे हैं। प्रतिमा के विवाह का विज्ञापन हुआ है। उसी सम्बन्ध में इंटरव्यू होने वाला है।)

(कामना प्रवेश करती है)

कामना : (हँसती हुई) नमस्ते जी !

प्रतिमा : आओ कामना, आओ ।

(अर्चना का प्रवेश)

अर्चना : प्रणाम, महारानी जी ।

प्रतिमा : इधर आ अर्चना। तुम लोगों ने बड़ी देर लगा दी। वे लोग सब आ गए हैं ।

कामना : (कुछ न समझकर) वे लोग ! कौन लोग ?

अर्चना : (व्यंग्य से) अरी तू इतना भी नहीं समझती। वे ही लोग। वे माने वे ।

प्रतिमा : (कुछ रूठती सी) देख अर्चना, हर समय मज़ाक ठीक नहीं होता। (अनुनय से) यह बखेड़ा तो खड़ा कर दिया कमबख्त। बता अब क्या होगा ?

अर्चना : होगा तेरा विवाह और क्या होगा। अच्छा, अब काम की बातें करो। तुम बैठो इस बीच की कुर्सी पर। बैठो। कामना रहेगी तुम्हारी दाहिनी ओर। चलो कामना। और मैं रहूँगी तुम्हारी बाईं ओर, यहाँ। अब ठीक है। मिस्टर लोग बैठेंगे सामने की कुर्सी पर।

प्रतिमा : पर मुझसे तो प्रश्न किये नहीं जायेंगे। प्रश्न तुम दोनों कर लेना। मैं चुप रहूँगी ।

कामना : और तुम्हारी जगह साथ भी फिर हम ही चली जायँगी। क्यों ?

अर्चना : (**मज़ाक करती हुई**) ओ कामना, तू अपनी बात कर। उस काम में मुझे न लपेट। हमारे यहाँ लिखा है : पर पुरुष का चिंतन नहीं करते। पाप लगता है।

कामना : वह विवाह के बाद का विधान है री, कुमारी लड़कियों पर लागू नहीं होता। तू ने सुना नहीं—"एक कन्या सहस्र वर"। विवाह से पहले कोई किसी के सम्बन्ध में कुछ भी सोच सकता है। कोई दोष नहीं।

प्रतिमा : माधुरी अभी तक नहीं आई। कहाँ है वह ?

माधुरी : (**स्टेजी ढंग से**) प्राधुरी प्रवेश करती है, रानी जी। (**हँसती हुई**) बाप रे बाप ! कोई टाई की नौट ठीक करने की धुन में लगा है, कोई अचकन का कोना झाड़ रहा है, कोई हाथ से बाल चिकना रहा है, कोई जल्दी-जल्दी कमरे में घूम रहा है। एक की इतनी मोटी चोटी है कि क्या बताऊँ।

अर्चना : वह भी लड़का है ?

कामना : अरी, लड़के का बाप-सा लगता है।

माधुरी : मंत्र पढ़ने के लिए भी तो एक पंडित की आवश्यकता है। चलो उसी से पढ़वा लेंगे।

प्रतिमा : अच्छा, यह तो बताओ, बुलाने का काम कौन करेगा ?

कामना : भई, मैं तो जाऊँगी नहीं।

अर्चना : हाँ भई आदमी हैं। कोई कुछ कह बैठे। मुझे भी डर लगता है।

माधुरी : अच्छा तुम बैठो। यह काम मैं करूंगी। मुझे किसी से डर नहीं लगता। (**जाती है**)

(**माधुरी नवयुवकों के कमरे में प्रवेश करती है**)

माधुरी : आप में से उलफ़तराय 'उलझन' कौन हैं ?

एक व्यक्ति जी, मैं। चलूँ ? आपके साथ चलूँ ?

माधुरी : जी, आइये।

(एक गैलरी में से जाना)

उलफ़त : प्रतिमा जी किस कमरे में हैं ?

माधुरी : पास वाले कमरे में। वैसे आप क्या करते हैं ?

उलफ़त : मैं (हँसता हुआ)....चोरी करता हूँ।

माधुरी : (चौंक कर) जी, आप चोर हैं ?

उलफ़त : नहीं, मैं कवि हूँ। आपके हृदय में जो भाव छिपे रहते हैं, उन्हें मैं अपना कहकर संसार के सामने प्रस्तुत करता हूँ। यह एक प्रकार की चोरी ही है, देवी जी; यद्यपि इसके लिए उच्चकोटि की कला अपेक्षित है। इस दृष्टि से सभी चोर हैं। पवन चोर है, बादल चोर है, चंद्रमा चोर है और........

(प्रतिमा के कमरे में प्रवेश)

प्रतिमा : पधारिए। आपको यहाँ कोई कष्ट तो नहीं हुआ ?

उलफ़त : यों तो बिना तप के कहीं फल नहीं मिलता। पृथ्वी तपती है, वृक्ष तपते हैं, सूरज तपता है। जो कष्ट हुआ भी, वह यहाँ आने पर दूर हो गया। अब कोई कष्ट नहीं।

कामना : आप करते क्या हैं ?

उलफ़त : (सहज भाव से) मैं प्यार करता हूँ !

अर्चना : (चौंककर) प्यार ? किसको प्यार करते हैं ?

उलफ़त : उषा-संध्या को, सूर्य-चंद्रमा को, समुद्र-आकाश को, गिरि-निर्झर को, लता-पल्लव को, पशु-पक्षी को, मैदान-कछार को, हरियाली रेगिस्तान को और सबसे उपर सृष्टि की सुन्दरतम विभूति.......

प्रतिमा : आप कवि हैं ?

उलफ़त : जी, मेरा नाम उलफ़तराय 'उलझन' है। कहें तो अपना नवीनतम गीत सुनाऊँ ?

कामना : प्रकाशित होने पर किसी पत्रिका में पढ़ लेंगे। (हँसती है)

उलफ़त : शिष्टता सम्बन्धी मुझसे कोई भूल हुई ?

प्रतिमा : नहीं-नहीं। यह कामना बचपन की हँसोड़ है। बिना बात हँस पड़ती है। आप बुरा न मानें। वैसे आपके जीवन का आदर्श क्या है ?

उलफ़त : काव्य की साधना ही मेरे जीवन का लक्ष्य है। कविता लिखकर मुझे जितना सुख मिलता है, उतना सुख और किसी बात से नहीं।

कामना : जीवन के सुख की ओर आपकी दृष्टि नहीं ?

उलफ़त : मेरी दृष्टि से जीवन एक विराट् काव्य है। विस्तृत वसुधा को ही मैं अपना घर समझता हूँ। जो काव्य के प्रेमी हैं वे वृक्ष के नीचे भी अपना जीवन सुख से व्यतीत कर सकते हैं।

अर्चना : नारी के सम्बन्ध में आपकी क्या धारणा है ?

उलफ़त : आह ! नारी सौंदर्य साकार है, कोमलता साकार है, स्नेह साकार है। वह जीवन की प्रेरणा है। इस प्रेरणा के बिना काव्य की साधना हो ही नहीं सकती। जीवन की साँस है वह। उसके बिना जीवन चल ही नहीं सकता। वह भावनाओं की प्रतिमा है।

अर्चना : (प्रसन्न होकर) ओह !

प्रतिमा : अच्छा, आपको बहुत कष्ट दिया। कोई असुविधा हो तो माधुरी से कहिए।

(उलझन विदा होते हैं। माधुरी साथ जाती है)

उलझन : खेद है कि मैं आप लोगों को अपनी नवीनतम रचना नहीं सुना पाया।

माधुरी : ऐसी क्या जल्दी है ? उसे अपने विवाह के अवसर पर सुनाइए।

(हँसती है)

(कमरे में प्रवेश)

माधुरी : मिस्टर कमलापति जी किधर हैं ?

कमलापति जी, मैं इधर रहा। तैयार हूँ।

(माधुरी और कमलापति गैलरी से जाते हुए)

कमल : आप उनकी बहिन हैं ?

माधुरी : जी नहीं, मैं उनकी सहेली हूँ। कहिए ?

कमल : जब उनकी सहेली इतनी आकर्षक हैं, तो वे न जाने....

माधुरी : चलकर देख लीजिए न। पर मुझे प्रशंसा सुनने का अभ्यास नहीं है। आइए।

(प्रतिमा के कमरे में प्रवेश)

प्रतिमा : इधर आइए।

कमल : आपका पत्र पाते ही मैंने अमरीका जाने का विचार स्थगित कर दिया।

कामना : ओह! अमरीका संसार का सबसे समृद्धशाली देश है। जो आकर्षण पहले इंग्लैंड के प्रति रहता था, वह अब अमरीका के प्रति होता जा रहा है।

कमल : मेरे पिता जी की जो कलकत्ते के एक बिज़िनैस मैगनेट हैं, बड़ी इच्छा थी कि मैं बाहर घूम आऊँ; पर मैंने उनको लिख दिया कि अभी थोड़े दिन तक मैं भारत नहीं छोड़ सकता।

प्रतिमा : आपके पिता की पुण्य इच्छा में मेरा पत्र बाधक हुआ, इसके लिए मुझे हार्दिक खेद है।

कमल : नहीं, नहीं, भविष्य में यात्रा और भी सुखद हो सकती है।

कामना : हाँ, भविष्य में ऐसा क्या है जिसके होने की संभावना नहीं। वैसे अपने भविष्य की आपकी योजना क्या है ?

कमल : जीवन को मैं सुख का साधन समझता हूँ। मेरी दृष्टि से सुख ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

अर्चना : साहित्य और कला से आपको कोई अनुराग नहीं ?

कमल : है क्यों नहीं। हम तो कला के पोषक हैं। पिछले वर्षों में पिता जी ने कई कवि-सम्मेलन अपनी कोठी पर ही कराये हैं। कवियों को दोनों ओर का फ़र्स्ट क्लास का किराया हमने दिया। दूर-दूर से कवि पधारे और भेंट स्वरूप किसी को एक सौ एक, किसी को पाँच सौ एक, और किसी को एक हज़ार एक तक हमने दिए।

अर्चना : आपको पूरा विश्वास है पैसा होने से ही व्यक्ति सुखी हो जाता है।

कामना : इसमें भी कोई दो मत हो सकते हैं ?

कमल : मैं तो यही समझता हूँ कि पैसा सब कुछ खरीद सकता है। जो सुख की खोज करते हैं, उन्हें सुख मिलता ही है। आख़िर, संसार में सुख की कोई कमी तो नहीं ?

प्रतिमा : संसार में चारों ओर इतना अभाव, इतनी पीड़ा, इतना हाहाकार है। इस क्रन्दन के बीच आप अकेले कैसे हँस सकते हैं?

कमल : समाज के दुःख और देश की पीड़ा मिटाने का काम समाज या राज्य का है, मेरा नहीं। मैं दूसरों के लिए अपने व्यक्तिगत जीवन को क्यों मलिन करूँ? अच्छे से अच्छा खाना, अच्छे से अच्छा पहनना, अच्छे ढंग से रहना, यही तो सफल जीवन है। इस जीवन का जहाँ अभ्यास हुआ कि आदर्श की सारी बातें थोड़े ही दिनों में आप स्वयं भूल जायँगी।

कामना : बात तो ठीक लगती है।

प्रतिमा : अच्छा, आपको बहुत थका दिया। आपके विचारों से परिचित होकर मेरे अपने अनुभव में वृद्धि हुई। आपके मन के प्रतिकूल कुछ निकल गया हो, तो क्षमा कीजिएगा।

(माधुरी और कमलापति गैलरी से जाते हुए)

कमल : आपके लिए सोने की अँगूठी मैं लाया था।

माधुरी : होना होगा तो आपका काम मैं बिना रिश्वत के ही कर दूंगी। पर पैसे से सबको नहीं खरीदा जा सकता, इतना स्मरण रहे।

कमल : आप ऐसा समझती हैं? यह मेरी तुच्छ भेंट है।

माधुरी : कभी-कभी भेंट और रिश्वत में बहुत कम अन्तर होता है। क्षमा करें।

कमल : आपने मेरी बात को बिल्कुल नहीं समझा। इस मित्रता का अन्त आप यहीं करना चाहती हैं?

माधुरी : मैं विवाहिता हूँ महाशय! आप कैसी बातें करते हैं! मुझे अभी और लोगों को मिलाना है। आइए।...उफ़।

(कमरे में प्रवेश)

माधुरी : आप में से श्री जीवन कौन हैं?

एक व्यक्ति : मैं हूँ।

माधुरी : आइए।

(माधुरी और जीवन जाते हैं। गैलरी में बातें नहीं करते। नवयुवकों के कमरे में बातचीत)

एक नव० : कहिए, उलझन जी आपसे क्या बातचीत हुई ?

उलझन : न पूछो मित्र। उसी कल्पना में लीन बैठा हूँ। बैठते ही बोलीं : यह मेरा सौभाग्य है कि आप जैसे महान् कवि के दर्शन हुए। आपकी कविताओं को पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने के लिए मैं कितनी लालायित रहती थी। सोचती थी जो इतना अच्छा लिखता है, वह स्वयं कितना अच्छा होगा। आज दर्शन भी कर लिए। मुझसे मेरी नवीनतम रचना सुनने के लिए आग्रह किया। मैं कैसे मना कर सकता था ?

युवक : तो आपने कविता सुनाई ?

उलझन : हाँ, भाई।

युवक : अरे हज़रत, सुनाई होती तो यहाँ आवाज़ न आती ?

उलझन : उफ़ ! तुम कुछ नहीं समझते। उसका शीर्षक था 'मौन वेदना'। उसकी आवाज़ नहीं आती।

युवक : (हँसता है) अब मि० कमलापति आप भी कोई चंडूलखाने की सुनाइए।

कमल : (**चौंककर**) जी !

(दूसरी ओर)

माधुरी : इधर से आइए इधर से।

जीवन : (**गंभीर स्वर में**) अच्छी बात है।

(**पास पहुँचकर**)

प्रतिमा : (**उसे एकटक देखती हुई**) नमस्ते !

माधुरी : ये जीवन जो हैं प्रतिमा। तू इनसे बैठने के लिए पूछना भी भूल गई।

प्रतिमा : ओह ! भूल हुई। क्षमा करें।

जीवन : वास्तव में क्षमा तो मुझे माँगनी चाहिए। पहला पत्र मेरे मित्र ने मेरे नाम से लिख दिया था। वह मुझे बहुत प्यार करता है। मैं

क्या कहूँ ? पर सच बात यह है कि मेरा सारा जीवन संघर्ष करते बीता है। अभी मैं इस योग्य नहीं हूँ कि किसी गंभीर उत्तरदायित्व को निभा सकूँ।

अर्चना : आवश्यकता पड़ने पर थोड़ी प्रतीक्षा भी तो की जा सकती है।

जीवन : प्रतीक्षा करना तो ठीक नहीं होगा। आप नहीं जानतीं मेरे पास इतना स्थान भी नहीं कि सुख में पले किसी व्यक्ति को बिठा भी सकूँ।

कामना : जब आप संघर्ष-प्रिय हैं तो धन भी किसी न किसी दिन आपके पास हो ही जायगा।

जीवन : परन्तु धन को मैं बहुत महत्व नहीं देता। उसे एक साधन ही मानता हूँ। एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के समान मेरा जीवन सम्मान-पूर्वक व्यतीत हो जाय, इतना ही चाहता हूँ।

अर्चना : कला के किसी क्षेत्र में कोई असाधारण कार्य कर दिखाने की आपकी कोई इच्छा नहीं ?

जीवन : नहीं।

अर्चना : (चकित होकर) नहीं ? क्यों ?

जीवन : साहित्य या कला को भी मैं एक साधन मानता हूँ।

कामना : आपकी दृष्टि से धन भी साधन है, कला भी साधन है, तब साध्य क्या है ?

जीवन : साध्य तो जीवन ही है। उसी के लिए धन या कला की उपयोगिता है।

प्रतिमा : तब जीवन से महान् आप कुछ नहीं मानते ?

जीवन : ईश्वर को मानता हूँ।

प्रतिमा : तब तो यह अपनी ही बात का खंडन करना हुआ ?

जीवन : एक प्रकार से नहीं। ईश्वर की उपासना का विधान इसीलिए है कि हम अधिक अच्छे मनुष्य बनें। अतः यहाँ भी लक्ष्य जीवन ही हुआ, ईश्वर नहीं। हो सकता है ईश्वर पर इस दृष्टि से किसी ने विचार न किया हो। पर महान् से महान् विचार की उपयोगिता

मेरी दृष्टि से इसी में निहित है कि वह व्यक्ति और विश्व के विकास में सहायक हो ।

प्रतिमा : अच्छी बात है । आज आपसे मिलकर जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण से मेरा परिचय हुआ । **(जीवन विदा लेता है)**

माधुरी : अच्छा प्रतिमा और लोगों से कहूँ कि नौ दो ग्यारह हों ।

प्रतिमा : नहीं, नहीं । उनसे कहो कल इसी समय भेंट होगी ।

माधुरी : (**प्यार और व्यंग्य से**) इस अभिनय से क्या लाभ है, प्यारी सखी । जीवन के महत्वपूर्ण निर्णय केवल एक बार होते हैं ।

प्रतिमा : तू मेरे निर्णय की बात जानती है ?

माधुरी : हाँ, हाँ, हाँ । निर्णय की भी और हृदय की भी ! कहे तो तेरे कान में कह दूँ ।

प्रतिमा : अच्छा मधु ! इस अंतिम व्यक्ति को देखकर लगा जैसे इन्हें मैंने पहले कहीं देखा है ।

माधुरी : (**मजाक करती हुई**) अरी, सपने में देखा होगा ।

प्रतिमा : चल, दुष्ट कहीं की ।

कामना : तो तुमने जीवन को पसन्द किया, प्रतिमा ?

प्रतिमा : हाँ, इसमें छिपाने की कोई बात नहीं । उन्होंने मुझे प्रभावित किया है !

कामना : परन्तु यह व्यक्ति तो बिल्कुल महत्वाकांक्षी नहीं है । जीवन में कभी बड़ा आदमी नहीं बन सकता ।

प्रतिमा : बड़े से तुम्हारा तात्पर्य धनी से है ।

कामना : और क्या ! मुझे तो मि० कमलापति का दृष्टकोण अधिक व्यावहारिक लगा ।

प्रतिमा : तो तुम्हारे कमलापति को मैं छीन थोड़े ही रही हूँ, भाई ।

कामना : (**बनावटी झुंझलाहट से**) यह क्या मजाक है, प्रतिमा ?

माधुरी : हाँ, भई, सत्य बात का मजाक नहीं होना चाहिए ।

अर्चना : लेकिन एक बात मुझे भी लगती है प्रतिमा । यह व्यक्ति जीवन में कोई असाधारण काम करके नहीं दिखा सकता । आश्चर्य की बात

है कि तुममें से किसी की दृष्टि 'उलझन' पर नहीं गई। वह व्यक्ति थोड़ा भावुक अवश्य है, पर सभी बड़े कलाकार भावुक होते हैं। मैं समझती हूँ जो ख्याति जीवन में किसी दिन 'उलझन' को मिल सकती है वह न तो कमलापति को और न जीवन को।

प्रतिमा : मैं विवाद नहीं करती, बहिन! पता नहीं क्यों, मेरी आत्मा ने जीवन को सहज भाव से स्वीकार कर लिया है। लेकिन अगर तुम समझती हो कि तुम 'उलझन' के साथ सुखी रहोगी तो........

अर्चना : परन्तु प्रतिमा, विवाह का तो तुम्हारे विज्ञापन हुआ है। कॉलेज की अध्यापिकायें और लड़कियाँ क्या कहेंगी? कहेंगी—कहाँ तो तीनों ही विवाह के नाम से चिढ़ती थीं और कहाँ अब तीनों ही एक साथ गृहस्थ बन बैठीं।

माधरी : (उपेक्षा से) अरे हटाओ भी। इस दुनिया की बातों की आदमी चिंता करने लगे, तो जीवन दो दिन न चले।

(शहनाई के स्वर)

* * *

(अर्चना घर में है। उलझन अभी कहीं बाहर से आया है।)

उलझन : आज कोई पत्र आया?

अर्चना : आए हैं। दो पत्रिकाएँ हैं, चार या पाँच चिट्ठियाँ हैं। तुम्हारे कविता-संग्रह की आलोचना निकली है।

उलझन : (उत्सुकता से) कैसी आलोचना है?

अर्चना : बहुत प्रशंसा की है।

उलझन : देखूं।

अर्चना : देख लेना। पहले बैठो तो सही।

(रुककर) तीसरे पहर कुछ लोग आए थे।

उलझन : किसलिए?

अर्चना : कोई कवि सम्मेलन है। उसमें कविता पढ़ने के लिए आग्रह कर रहे थे। मैंने मना कर दिया।

उलझन : अरे, मना क्यों कर दिया ? तुम भी चलना। बहुत अच्छा रहेगा।

अर्चना : नहीं, सुबह से थके हुए तो अब आए हो। कवि-सम्मेलनों में लोग बेकार वाह-वाह करते हैं। समझते खाक नहीं।

उलझन : तो यों कहो, तुम्हें मेरी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती।

अर्चना : नहीं, नहीं, वह बात नहीं। बहुत अच्छी लगती है। जब कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है, तो लगता है आनन्द का फूल जैसे मेरे ही हृदय में खिल उठा है। लेकिन तुम कवि-सम्मेलनों में न जाया करो। मैं वहाँ नहीं जाने दूँगी।

उलझन : आखिर, बात क्या है ?

अर्चना : पिछले बार मैं तुम्हारे साथ गई थी न ?

उलझन : हाँ।

अर्चना : मैंने देखा बहुत सी लड़कियाँ तुम्हें घूर कर देख रही थीं और तुम्हारे सम्बन्ध में बड़े अनुराग से बातें कर रही थीं और जब कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ तो तुम्हारे चारों तरफ घिर आईं। एक ने ती तुम्हें छू भी लिया।

उलझन : (हँसता है) कलाकार के प्रति यह आकर्षण तो लगा ही रहता है। नारी के हृदय का जो भाव कलाकार को मिलता है, वह सम्राट् को भी नहीं मिल सकता।

अर्चना : क्यों ?

उलझन : यह एक रहस्य है। फिर कभी समझाऊँगा।

अर्चना : और मैंने आज तुम्हारी सब चिट्ठियाँ पढ़ ली हैं।

उलझन : अच्छा किया।

अर्चना : (गंभीर होकर) यह गीता कौन है ?

उलझन : क्यों ?

अर्चना : यह तो बहुत भावपूर्ण पत्र लिखती है।

उलझन : तो इसमें मैं कहाँ दोषी हूँ ?

अर्चना : तुम उत्तर ही मत दो।

उलझन : यह कैसे हो सकता है, अर्चना ! साहित्य और कला के संबंध में ये लोग प्रश्न करते हैं। उत्तर देना मेरा कर्त्तव्य हैं ।

अर्चना : पर एक विवाहित पुरुष को ऐसे भावपूर्ण पत्र लिखते इन्हें संकोच नहीं लगता ?

उलझन : अब कोई पत्र लिखते समय थोड़ा भावपूर्ण हो जाय तो मैं क्या कर सकता हूँ ?

अर्चना : तब कहो कि तुम्हें ही यह सब कुछ अच्छा लगता है, तुम्हीं इन्हें प्रोत्साहन देते हो। भविष्य में ऐसे पत्र तुम्हारे पास आये, तो मैं सब फाड़ दूँगी ।

उलझन : नहीं नहीं, ऐसा नहीं करते । उन पत्रों में कोई महत्वपूर्ण बात हो सकती है ।

अर्चना : (**व्यंग्य से**) हो क्यों नहीं सकती !

उलझन : देखो, इस तरह अकारण संदेह नहीं करते । संदेह जीवन को विषमय बना देता है ।

अर्चना : मेरी एक बात का जवाब दो । मैं कौन हूँ ?

उलझन : (**हँसता है**) क्यों ? तुम मेरी पत्नी हो।

अर्चना : पत्नी से कभी प्यार की भी बात की जाती है ?

उलझन : (**गंभीर होकर**) तुम्हें मुझसे कोई शिकायत है, अर्चना ? मैं थोड़ा लिखने के काम में अवश्य अधिक व्यस्त रहता हूँ, पर तुम्हारा मैंने कभी तिरस्कार किया हो, ऐसा तो स्मरण नहीं ।

अर्चना : अच्छा, तुम्हीं स्मरण करके बतलाओ, तुमने कभी मुझसे कोई ऐसी बात कही है जिसे सुनकर नारी का जीवन धन्य हो जाता है ।

उलझन : इतना तो तुम जानती हो कि मुझसे बातें करना नहीं आता ।

अर्चना : नहीं आता तो नाटक-कहानियों में ऐसी सुन्दर बातें कैसे लिखते हो ?

उलझन : (**हँसता है**) तो तुम समझती हो, हम तुम नाटक कहानियों के पात्र हैं ?

अर्चना : (**खीझकर**) यह मैं कुछ नहीं जानती । पर क्या बहुत सी बातें तुम मुझसे नहीं छिपाते ?

उलझन : कुछ भी नहीं छिपाता।

अर्चना : जो बात मैं पूछूँ उसका उत्तर ठीक से दोगे ?

उलझन : हाँ।

अर्चना : जिसे लेकर तुमने ये गीत लिखे हैं, वह कौन है ?

उलझन : यह काव्य-जगत का एक रहस्य है, अर्चना ! इसे खोलने के लिए मुझे वाध्य न करो।

अर्चना : देखो, मैंने कहा था न कि बात टाल जाओगे।

उलझन : अच्छा समझ लो....कल्पना है।

अर्चना : मैं तो किसी दिन मर जाऊँगी, पर एक बात संसार भर की स्त्रियों से कह जाऊँगी।

उलझन : क्या ?

अर्चना : यही कि कोई स्त्री किसी कलाकार से कभी विवाह न करे।

उलझन: क्यों भई, कलाकार पर इतना रोष नहीं ?

अर्चना : मेरा अपना अनुभव है कि कैसी ही स्त्री हो, कलाकार के साथ विवाह करके कभी सुखी नहीं रह सकती।

* * *

(कामना और कमलापति)

कामना : इस बार यह नई कार मैं अपने साथ ले जाऊँगी। इसी में बैठकर मैं कॉलेज पढ़ाने जाया करूँगी। कितना अच्छा लगेगा !

कमलापति : परन्तु कॉलेज के अधिकारियों को तो मैंने इस आशय का पत्र लिख दिया कि इस जुलाई से तुम कॉलेज न जा सकोगी।

कामना : मुझसे बिना पूछे ही ?

कमल : हाँ। इसमें पूछने की क्या वात थी ?

कामना : लेकिन क्यों ?

कमल : तुम इतने बड़े घर की वहू होकर कॉलेज में नौकरी करती फिरो, यह हमारे लिये बदनामी की बात है। इतनी साधारण सी बात भी नहीं समझतीं ?

कामना : लेकिन मुझे उस काम से एक प्रकार का आत्मिक सुख मिलता है।

कमल : पर यहाँ तुम्हें किस सुख की कमी है ? पहनने के लिये तुम्हारे पास इतने कपड़े हैं कि चाहो तो रोज़ एक नई साड़ी बदल सकती हो। नवीनतम डिज़ाइन के आभूषण जौहरी तुम्हें स्वयं दिखाने के लिए ले आते हैं। घूमने के लिए कार है, रहने के लिए इतनी बड़ी कोठी। काम के लिए नौकर-चाकर हैं। कोई और इच्छा हो तो मुझे बतलाओ। उसे मैं पूरा करूँ।

कामना : तुम समझते हो, इस सारी चमक-दमक के बीच मेरा मन लग सकता है ?

कमल : मैं कैसा हूँ ?

कामना : तुम सबेरे निकल कर जाते हो और रात को ग्यारह बजे से पहले कभी नहीं लौटते। क्या तुम समझते हो इससे मेरे प्रति न्याय होता है ?

कमल : देखो, कामना, बिना परिश्रम के धन नहीं उत्पन्न होता। धनियों की कोई कितनी ही निन्दा करे, पर उनमें वह गुण अवश्य होता है जिससे धन कमाया जाता है। और वह गुण है अथक परिश्रम करने का। व्यापारी का जीवन तो व्यस्त व्यक्ति का जीवन है। इसी से कभी-कभी देर होने पर मैं आफ़िस में ही सो जाता हूँ।

कामना : पर मुझे पता चला है वहाँ नाच-रंग भी होता है।

कमल : (**झुँझलाहट में**) यह बात तुमसे किसने कही ? बुड्ढे धनी-राम ने ?

कामना : किसी ने कही हो, पर मैं पूछती हूँ, क्या यह झूठ है ?

कमल : (**कृत्रिम भाव से**) क्या बताऊँ, मित्र लोग आकर घेर लेते हैं तो कभी-कभी उनका मन रखने के लिये थोड़े मनोरंजन का प्रबन्ध करना पड़ता है।

कामना : यह बात सुनने में कैसी लगती है ?

कमल : परन्तु मैंने तुम्हें तो कभी कोई दुःख नहीं दिया ?

कामना : दुःख देना क्या किसी को केवल भूख से तड़पाकर मार डालना है ? दुःख देने के और भी बहुत से ऐसे रूप हैं जिन पर संसार की कभी दृष्टि नहीं पड़ती ।

कमल : मेरा पूछना तो यह है, कि क्या तुम सुखी नहीं हो ?

कामना : (कुछ उत्तेजित होकर) मुझे सुख नहीं चाहिए, पत्नी का अधिकार चाहिए ।

कमल : तुम ऐसे नाराज़ होगी, तो लगता है अब अपने ऑफ़िस को ही मुझे अपना घर समझना होगा ।

(जाता है)

* * *

(प्रतिमा का घर)

प्रतिमा : आफ़िस में तुम्हें बहुत काम करना पड़ता है न ? थक जाते होगे ?

जीवन : काम तो बहुत करना पड़ता है, पर मैं थकता बिल्कुल नहीं। प्रत्येक पल मुले लगता है जैसे चुप से मेरे पास कोई खड़ा है और जब मुझे यह ध्यान आता है कि घर पर कोई मेरी प्रतीक्षा कर रहा होगा, तब मेरा बोझ हलका हो जाता है ।

प्रतिमा : सच, तुम्हें लौटने में थोड़ी देर हो जाती है तो मेरा हृदय न जाने कैसा होने लगता है ।

जीवन : क्यों जी, तुम न कभी अप्रसन्न होती हो, न झगड़ा करती हो और न कुछ माँगती हो । कैसी स्त्री हो तुम ?

प्रतिमा : किससे अप्रसन्न होऊँ ? अपने से ? झगड़े के लिए भी तो दो आदमियों की ज़रूरत है । तुम्हीं बताओ अपने से कैसे झगड़ा किया जाता है ? रही माँगने की बात । अरे, जब तुम जैसी चीज भाग्य ने मुझे दे दी, तब छोटी-मोटी चीज़ों के लिए क्या हाथ फैलाऊँ ?

जीवन : लेकिन प्रतिमा ! तुमने ग़लत आदमी को चुना, इस बात का दुःख तो तुम्हें कभी-कभी होता होगा ?

प्रतिमा : क्यों ?

जीवन : क्यों क्या, यह तो तुम जानती हो जीवन में मैं कोई असाधारण

काम करके नहीं दिखा सकता ।

प्रतिमा : अब देखो, यही बात तो मुझे बुरी लगती है कि तुम बात पकड़कर बैठ जाते हो। तुम्हें कोई बात बतानी ठीक नहीं। पर उस असाधारण काम करने वाले की पत्नी का भी पत्र आया है।

जीवन : बहुत सुखी है न अर्चना ? अपने पति के यश पर भारी गर्व का अनुभव करती होगी।

प्रतिमा : लिखा है : बहिन, उनके यश की भागिनी हूँ, यह सत्य है। पर वह यश मेरे लिए तो अभिशाप बन गया है। तुम्हारे लेखक जी रात-दिन अपने कल्पना के संसार में डूबे रहते हैं। कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास—एक अनंत क्रम है। लगता है इसका कभी अन्त न होगा। जिस समय मेरा बाहर जाने को, पास बैठने को, दो मीठी बातें सुनने को मन करता है, उस समय वे भावना के लोक में डूबे रहते हैं। कहते हैं, जो भाव एक बार आता है, लौट जाने पर फिर नहीं आता। इस प्रेरणा से मैं बड़ी परेशान हूँ। लगता है मुझसे तो उनका विवाह नाम मात्र को हुआ है, उनको वास्तविक पत्नी तो कला ही है। इस घुटन, इस धुएँ, इस जीवित-मृत्यु को तुम पर कैसे प्रकट करूँ, नहीं जानती।

जीवन : यह तो बहुत बुरी बात है कि पुरुष अपनी पत्नी की कोमल भावनाओं का ध्यान न रखे।

प्रतिमा : 'उलझन' का इसमें दोष नहीं है। यह जानबूझ कर ऐसा नहीं करता। कवि या दार्शनिक के लिए यह संभव नहीं है कि सामान्य व्यक्ति के समान जीवन में रस ले सके।

जीवन : क्यों ?

प्रतिमा : बता दूँगी तो तुम भी वैसे ही हो जाओगे।

जीवन : सच, तुम जैसी नारी को देखकर ही संसार ने पहली बार पत्नी को गृह-लक्ष्मी की उपाधि दी होगी। तुम्हारे आते ही मुझे इतने शीघ्र इतनी अच्छी नौकरी मिल गई....

प्रतिमा : फिर भी तुम्हें कोई अभाव कहीं खटकता है !

जीवन : यों आज हमारे घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं, फिर भी यदि कामना से तुम्हारी भेंट हो गई तो क्या धन के मद में वह तुम्हें हीन दृष्टि से न देखेगी ?

प्रतिमा : (हँसकर) क्यों जी, तुम हो बड़े चालाक ?

जीवन : कैसे ?

प्रतिमा : यही जानना चाहते हो न कि उसका जीवन कैसे चल रहा है ? अपनी सहेलियों के भेद खोलूँ यह अच्छा तो नहीं है, पर तुमसे कुछ छिपाये बनता नहीं। इतना ही समझ लो कि वह भी अपने जीवन से बिल्कुल संतुष्ट नहीं !

जीवन : यह तो अच्छी सूचना नहीं, प्रतिमा !

प्रतिमा : व्यक्ति बिल्कुल दोषी नहीं होता, यह मैं नहीं कहती; पर पैसे में कुछ ऐसा है कि वह व्यक्ति को बिगाड़ देता है। अधिक पैसा होने का यह अनिवार्य परिणाम है कि व्यक्ति का मन और प्रकार का हो जाता है, उसकी नैतिकता की धारणा बदल जाती है, समाज संसार, ईश्वर की वह चिंता नहीं करता। धन सबसे अधिक मादक द्रव्य है। उसे पाकर बहक जाना आश्चर्य की बात नहीं, न बहकना ही आश्चर्य की बात है।

जीवन : तब तो तुम यह भी नहीं चाहती होगी कि हमारे पास बहुत धन हो ?

प्रतिमा : तुम बुरा मानो चाहे भला, मैं तो ईश्वर से सदैव यही प्रार्थना करती रहती हूँ कि तुम बहुत धनी कभी न हो।

जीवन : (हँसता है) तुम अच्छी पत्नी हो जी जो अपने पति को धनी होते नहीं देखना चाहतीं।

प्रतिमा : इसलिए कि मैं जानती हूँ, धन मिल जायगा, पर तुम खो जाओगे। और सच मानो संसार की बड़ी से बड़ी चीज से मैं तुम्हें नहीं बदलना चाहती।

जीवन : (हँसता हुआ) यह भी कोई रहस्य है ?

प्रतिमा : यह रहस्य नारी-हृदय का है। उस दिन अर्चना और कामना दोनों ने मेरे चुनाव पर मेरी हँसी उड़ाई थीं....एक की आँख यश पर थी, दूसरी की धन पर। व्यक्ति का तो मात्र नाम ही था; पर सच बात यह है कि एक ने यश से विवाह किया था, दूसरी ने धन से। और तुम देख रहे हो एक संतुष्ट है, पर सुखी नहीं, दूसरी सुखी है, पर संतुष्ट नहीं।

जीवन : और तुम ?

प्रतिमा : जाओ, सब बातें बताने की नहीं होतीं।

वसंत की आत्मा

पात्र

रमेश
व्रजेश
अवधेश
कमलेश
करुणेश
हृदयेश
अखिलेश
शेष

राधा
लता

वसंत की आत्मा

[**राधा अपने घर में गाती हुई घूम रही है**]

कहूँ प्यारो भौंरा भटकि, रह्यो रे !
इन क्यारिन नहिं आयो आज,
कहूँ भौंरा भटकि रह्यो रे !

[**अपने मित्र रमेश के साथ व्रजेश प्रवेश करता है**]

व्रजेश : राधा !

राधा : जी।

व्रजेश : यह उलाहना किसे दिया जा रहा है ?

राधा : जी, किसी को नहीं। मैं तो एक गीत गा रही थी।

व्रजेश : तब मेरे समझने में भूल हुई।
(**रुककर**) लेकिन देखो, तुम्हारा यह देवर रमेश आया है। इसी को लेने मैं स्टेशन चला गया था।

रमेश : (**बढ़कर**) नमस्ते भाभी।

राधा : नमस्ते। आइए।

व्रजेश : और देखो रास्ते भर यह तंग करता आया है। कह रहा था कि तुम्हारे शहर में न आते तो अच्छा होता।

राधा : क्यों ?

रमेश : वसंत में यह उदासी, भाभी ! यहाँ तो वातावरण में जैसे एक प्रकार का सूनापन है।

राधा : लेकिन बसंत-ऋतु अभी आई कहाँ है ?

रमेश : वसंत ऋतु अभी नहीं आई, भाभी ?

राधा : इस देश में वसंत ऋतु होली के उपरांत चैत्र-वैशाख में मानी जाती है, देवर। इसी से इन महीनों को मधु-माधव भी कहते हैं। यों

ऋतु-परिवर्तन के कुछ हल्के लक्षण इस वसंत-पंचमी से ही प्रारंभ हो जाते हैं। किसी युग में आर्य-जाति बड़ी आशावादी और आनंदवादी रही है।

व्रजेश : लेकिन राधा, तुम्हारे स्वर में तो आज निराशा और उदासी थी।

राधा : त्योहार का दिन और तुम बाहर घूम रहे हो; फिर स्वर में आशा और आनंद आयें कहाँ से ?

(रुककर) लेकिन सुनो, पंडित जी वसंत दे गए हैं। लो, तुम भी ग्रहण करो।

रमेश : ये तो सरसों के फूल, आम का बौर, कच्चे जौ की बाल और टेसू के फूल हैं।

राधा : इसी को वसंत देना कहते है, देवर। ये वस्तुएँ वसंत की प्रतीक हैं। यह वसंत तुम दोनों को शुभ हो।

रमेश : और तुम्हें भी भाभी।

राधा : तुम्हारे शुभ से ही मेरा शुभ है, भाई।

व्रजेश : लेकिन राधा, इसकी शिकायत तो मिटानी होगी।

राधा : कैसे ?

व्रजेश : चलो, बाहर चलें और इसे दिखायें कि हमारे नगर को यह जितना आनंद-हीन समझता है, वह उतना है नहीं। उसमें वसंत की आत्मा कहीं बसती है। वसंत के वास्तविक दर्शन तो इसे तब होते, जब यह किसी गाँव की ओर निकल जाता। वहाँ खेतों की हरियाली और सरसों के पीलेपन से इसके नेत्र, आम्रमंजरी की सुवास से इसका घ्राण एवं कोकिल की कूक से इसकी श्रवणेन्द्रियाँ तृप्त होतीं। पर यह चला आया हमारे नगर की ओर, जहाँ आधुनिकता के मोह में उसके नागरिक प्रकृति के जीवंत सम्पर्क से बहुत दूर चले गए हैं। फिर भी इसकी शिकायत तो मिटानी ही होगी, राधा !

राधा : (हँसकर) तब मैं भी चलूं ?

व्रजेश : चलो न।

रमेश : (आग्रह से) चलो न भाभी। प्रसन्नता के दिन घर में क्या बैठे रहना !

राधा : अच्छी बात है, चलो।

(तीनों एक स्थान पर पहुँचते हैं जहां वसंत मनाया जा रहा है)

गान

खेलत बसंत राजाधिराज,
देखत नभ कौतुक सुर-समाज।
बाजहिं मृदंग, डफ़, ताल, बेनु,
छिरके सुगंध भरे मलय रेनु।
उत जुवति-जूथ जानकी संग,
पहिरे पट भूषन सरस रंग।
नुपुर किंकिन धुनि अति सोहाइ,
ललनागन जब जेहि धरइं धाइ।
चढ़े खरनि विदूषक स्वाँग साजि,
करें कूट, निपट गई लाज भाजि।
नर-नारि परस्पर गारि देत,
सुन हँसत राम भाइन समेत।
बरसत प्रसून वर विबुध वृंद,
जय-जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद।
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध वासु,
गावत कल कीरति 'तुलसिदास'।

रमेश : यह किसकी कविता है साहब ?

अवधेश : अरे भाई, सुना नहीं, प्रातः स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास की रचना है। इसमें गुसाईं जी ने राम के शासन-काल में वसंतोत्सव का वर्णन किया है।

रमेश : तो राम-राज्य में लोग वसंत के दिनों में गधों पर चढ़ते थे ?

कमलेश : सबके लिए न कहिए, साहब ! केवल विदूषकों के लिए लिखा है।

अवधेश : (व्रजेश से) आपका परिचय व्रजेश जी ?

व्रजेश : आप मेरे मित्र रमेश जी हैं। बड़े सहृदय, काव्य-प्रेमी और मौजी जीव हैं।

गान

फागुन के दिन चार रे,
होली खेल मना रे!!
बिन करताल पखावज बाजै
अनहद की झनकार रे।
बिन सुर राग छतीसूँ गावैं
रोम-रोम रंग सार रे।
सील संतोष की केसर घोली
प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर
बरसत रंग अपार रे।
घट के पट सब खोल दिए हैं
लोक-लाज सब डार रे।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर
चरण कमल बलिहार रे।

रमेश : मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोगों में व्रजभाषा का प्रेम अभी तक बना हुआ है।

अवधेश : आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हमारी गोष्ठी में एक ऐसे व्रजभाषा-प्रेमी भी हैं जिन्हें इतना याद है कि प्राचीन काव्य में से आप कोई एक पंक्ति सुना दें, तो शेष की पूर्ति वे कर देंगे। नाम है उनका 'हृदयेश' जी।

कमलेश : यह दावा तो मैं भी कर सकता हूँ।

व्रजेश : ओहो, कमलेश जी हैं!

कमलेश : जी।

रमेश : तो फिर हृदयेश जी और कमलेश जी ही क्यों न एक दूसरे की परीक्षा लें।

कमलेश : मैं तैयार हूँ।

हृदयेश : मैं भी तैयार हूँ।

लता : (एक कोने से) आप दोनों में से किसी की स्मृति काम न दे, तो मुझे स्मरण किया जाय।

अवधेश : वाह, लता जी।

(रुककर) देखिए, आप लोगों में से अपनी कविता कोई नहीं सुनावेगा—केवल प्राचीन कवियों की कविताएँ सुनानी होंगी।

हृदयेश : और वे भी केवल व्रजभाषा की।

कमलेश : और उनमें भी केवल वसंत-संबंधी।

लता : और वसंत-वर्णन में भी केवल कवित्त-सवैये।

हृदयेश : मंज़ूर है।

कमलेश : स्वीकार है।

अवधेश : मैं एक छंद की अंतिम पंक्ति देता हूँ—आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय।

—कमलेश जी बतायें कि यह किसका छंद है।

रमेश : (साँस फेंककर) बसंत बजमारो हाय।

कमलेश : छंद भारतेन्दु हरिश्चंद्र का है। अवधेश जी सुनें।

बन-बन आग सी लगाइ कै पलास फूले,
सरसों, गुलाब, गुललाला, कचनारो हाय,
आइ गयौ सिर पै चढ़ाय मैन बान निज,
बिरहिन दौरि-दौरि प्रानन सम्हारौ हाय,
'हरिचंद' कोइलें कुहुकि फिरें बन-बन,
बाजि लागौ जग फेरि काम को नगारो हाय,
दूर प्रान प्यारो काकों लीजिए सहारो अब,
आयो फेरि सिर पै बसंत बजमारो हाय।

(रुककर) एक पंक्ति मैं दे रहा हूँ—क्या बहार है बसंत की।—इसे हृदयेश जी पूरा करें।

रमेश : (धीरे से)—क्या बहार है बसंत की।

हृदयेश : कवित्त 'ग्वाल' कवि का है। 'कमलेश' जी सुनें।

सरसों के खेत की बिछायत बसंत बनी,
तामैं खड़ी चाँदनी बसंती रति कंत की ;
सोने के पलंग पर बसन बसंती साज,
सोनजुही मालै हालै हिय हुलसंत की,
'ग्वाल' कवि प्यारौ पुखराजन को प्याला पूर,
प्यावत प्रिया को करै बात विलसंत की,
राग में बसंत, बाग-बाग में बसंत फूल्यौ
लाग में बसंत, क्या बहार है बसंत की।

(रुककर) अब मैं लता जी के अनुकूल एक पंक्ति पढ़ रहा हूँ—यातें इन आँखिन गुलाल लाल डारौ ना !

रमेश : वाह-वाह, गुलाल लाल डारौ ना।

राधा : (टोकती हुई) देवर !

रमेश : अरे भाभी, क्या रसपूर्ण पंक्ति है :—आँखिन गुलाल लाल डारौ ना।

लता : पंक्ति फिर भारतेन्दु हरिश्चंद्र की है। जैसा भी बन पड़ेगा, सुना रही हूँ—

खेलो मिलि होरी, ढोरो केसर कमोरी, फेंको
भरि-भरि झोरी, लाज जिय में विचारो ना;
डारौ सबै रंग संग चंग हू बजाओ, गाओ,
सबन रिझाओ, सरसाओ, संक धारो ना;
कहत निहोरि, कर जोरि, 'हरिचंद' प्यारे,
मेरी बिनती है एक हा-हा ताहि टारो ना;
नैन हैं चकोर, मुखचंद तैं परैगी ओट,
यातें इन आँखिन गुलाल लाल डारो ना।

(रुककर) मेरी ओर से पंक्ति है—वीर बसंतहि आवन दे री !
....मेरा आग्रह है कि इस छंद को अवधेश जी सुनावें।

अवधेश : भाई साफ़ बात है मुझे इस प्रकार की बातों का अभ्यास नहीं।

व्रजेश : इस छंद को मैं सुनाता हूँ।

रमेश : वाह भाई साहब, भाभी की बात का उत्तर आप नहीं देंगे तो और कौन देगा !

ब्रजेश : यह सवैया ऐसे कवि का है जो बहुत प्रसिद्ध नहीं है। नाम है 'किशोर'। सुनिए—

फूलन दे अब टेसू कदंबन, अंबन बौरन आवन दे री,
री मधुमत्त मधूपन पुंजन गुंजन सोर मचावन दे री,
क्यों सहिहै सुकुमारि 'किशोर' अली कल कोकिल गावन दे री,
आवत ही बनिहै घर कंतहि, वीर वसंतहि आवन देरी।

(रुककर) मेरो ओर से पंक्ति है—डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।
—इस छंद को 'रमेश' जी सुनावें।

रमेश : (आवेश में) क्या आपने हमें बिल्कुल कोरा समझ लिया है ? कवित्त है 'पद्माकर' का। सुनिए—

पात बिन कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के,
परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं;
कहैं 'पद्माकर' विलासी या बसंत के सु
ऐसे उतपात गात गोपिन के भुंज हैं;
ऊधौ यह सूधौ सौ संदेसो कहि दीजो भलो,
हरि सों, हमारे ह्याँ न फूले बन कुंज हैं;
किंशुक, गुलाब, कचनार औ' अनारन की
डारन पै डोलत अँगारन के पुंज हैं।

(रुककर) एक संकेत अब मैं देता हूँ—फेरि अलि ऐहैं नाहीं।
इस पद की पूर्ति भाभी जी करें।

राधा : हमारे देवर धोखे पर उतर आए हैं। तय यह हुआ था कि छंद-पाठ केवल कवित्त-सवैयों तक सीमित रहेगा ; पर यह न कवित्त है न सवैया, दीनदयाल गिरि की कुंडलिया हैं। फिर भी देवर की लाज रखने के लिए मैं उस छंद को सुनाती हूँ—

नाहीं फूल गुलाब तू गुनि मधुकर गुंजार,
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार।
बहुरि कटीली डार होइगी ग्रीषम आए,
लुवें चलेंगी संग अंग सब जैहैं ताए,
बरनै 'दीनदयाल' फूल जौं लौं तो पाहीं,
रहे घेरि चहुँ फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं।

(**रुककर**) आप सबकी आज्ञा हो तो एक पंक्ति मैं भी दूं।

अवधेश : अवश्य राधा जी। व्रजेश जी ने तो आज तक बताया ही नहीं कि आपको भी कविता से इतना प्रेम है।

राधा : पंक्ति है—कर-पल्लव जोरि कै एक असीसहिं।

(**सब चुप रहते हैं**)

अवधेश : कहिए 'हृदयेश' जी !

हृदयेश : सवैया मुझे याद तो था; पर इस समय स्मरण नहीं आ रहा है।

अवधेश : आप 'कमलेश' जी ?

कमलेश : इस पर तो मेरी स्मृति भी काम नहीं कर रही है। छंद बहुत प्रसिद्ध नहीं है। कोई प्रसिद्ध छंद कहिए।

रमेश : बात छंद की थी प्रसिद्ध अप्रसिद्ध की नहीं।

लता : यह सवैया अयोध्या के महाराज मानसिंह उपनाम 'द्विजदेव' का है। मैं सुनाती हूँ !

अवधेश : आखिर, आड़े समय पर आप ही काम आयीं। (हँसता है)

लता : सुनिए—

डोलि रहे विकसे तरु एक सु एक रहे हैं नवाइ कै सीसहि;
त्यों 'द्विजदेव' मरंद के व्याज सों एक अनंद के आँसू बरीसहिं,

कौन कहै उपमा तिन की जे लहेई सबै विधि सम्पति दीसहिं,
तैसेइ ह्वै अनुराग भरे कर-पल्लव जोरि कै एक असीसहिं।

(रुककर) मेरा प्रस्ताव है कि परीक्षा बहुत कठिन न हो, नहीं तो काव्य-पाठ का सारा रस समाप्त हो जायगा। व्यक्ति के अध्ययन और स्मरण की एक सीमा होती है। मैं एक सरल पंक्ति देती हूँ—ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने में।

अवधेश : (हँसकर) आप लोग कहेंगे कि हमने कुछ नहीं सुनाया; अतः इसे हम सुनाते हैं। यह कवित्त श्री जगन्नाथदास 'रत्नाकर' का है। सुनिए—

विकसित विपिन बसंतिकावली कौ रंग
लखियत गोपिन के अंग पियराने में;
बौरे बृंद लसत रसाल वर वारिन के;
पिक की पुकार है चवाब उमगाने में;
होत पतझार झार तरुनि समूहनि को
वैहरि वतास लै उसास अधिकाने में;
काम-विधि वाम की कला में मीनमेख कहा
उधौ नित बसत बसंत बरसाने में।

[एक व्यक्ति दूर से गाता हुआ आता है]

सरस आम की मंजरी
हरित पीत कछु लाल,
है सर्वस्व वसंत तू....

(पास आकर)   नमस्कार !

कुछ स्वर : नमस्कार ! नमस्कार !

व्यक्ति : इस रस-धारा में व्याघात उत्पन्न करने के लिए क्षमा करें; पर आप सबको 'शेष' जी बहुत देर से स्मरण कर रहे हैं।

अवधेश : ओह, यह तो मैं एकदम भूल ही गया कि 'शेष' जी के 'व्रज-भाषा-समाज' में हम सबको चलना है।

हृदयेश : अच्छी खासी गोष्ठी जम रही है। यह आप क्या कर रहे हैं, अवधेश जी ?

कमलेश : 'शेष' जी को यहीं क्यों न बुला लिया जाय ?

व्रजेश : हाँ, हाँ, यह ठीक रहेगा,

अवधेश : नहीं, हम लोग वहीं चलें। हमारे न पहुँचने से वह बहुत दुःखी होगा। पास में ही तो घर है।

कुछ स्वर : तब चलिए।

[सब गाते हुए चलते हैं]

अवधेश : कूलन में, केलि में, कछारन में, कुंजन में,
क्यारिन में कलित कलीन किलकंत हैं;

हृदयेश : कहै 'पदमाकर' परागन में, पौन हूँ में
पानन में, पीक में पलाशन पगंत हैं;

कमलेश : द्वार में, दिशान में, दुनी में, देश-देशन में,
देखो, दीप-दीपन में दीपत दिगंत हैं;

व्रजेश : बीथिन में, ब्रज में, नवेलिन में, बेलिन में,
बनन में, बागन में, बगरयो बसंत है।

अवधेश : (रुककर) डार द्रुम-पातन बिछौना नव पल्लव के
सुमन भँगूला सोहै तन छवि भारी दै;

हृदयेश : पवन झुलावै, केकी कीर बतरावैं 'देव'
कोकिल हुलावै हुलसावै कर तारी दै;

कमलेश : पूरित पराग सों उतारा करै राई-नोन
कंजकली नायिका लतानि सिर सारी दै;

व्रजेश : मदन महीप जू को बालक बसंत ताहि
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।

अवधेश : लीजिए, यह आ गया 'शेष' जी का स्थान।

[गीत की ध्वनि उठती है]

फूल बिनन नहिं जाऊँ सखी री,
हरि बिन कैसे बीनों फूल;

सुन री सखी, मोहि राम दोहाई,
फूल लगत तिरसूल !....

—हम लोग भी आ गए 'शेष' जी।

शेष : आइए अवधेश जी। बड़ी कृपा की।
(देखकर) हृदयेश जी इधर आइए। कमलेश जी, इधर !

व्रजेश : (पास आ कर) मेरा नाम ब्रजेश।

रमेश : और मैं रमेश।

शेष : आइए, सब का स्वागत है।
(राधा और लता को देखकर) आइए देवी जी, आप दोनों महिलाओं की पंक्ति में आगे बैठ जाइए।

रमेश : देखिए शेष जी, आज आपके यहाँ कितने ईश इकट्ठे हो गए हैं—अवधेश जी, कमलेश जी, हृदयेश जी, व्रजेश जी, मैं रमेश जी, और आप स्वयं शेष जी !

करुणेश : (एक कोने में) मैं यहाँ बैठा करुणेश।

अखिलेश : (दूसरे कोने से) और मैं अखिलेश, जो अभी आप सब को लेने गया था।

[सब हँसते हैं]

रमेश : करुणेश जी, मैं आप से एक बात पूछना चाहता हूँ।

करुणेश : जी, पूछिए।

रमेश : आपने अपना नाम 'करुणेश' क्यों रखा है ?

करुणेश : इसलिए कि मेरा विश्वास है जीवन में सभी कहीं दुःख है। दुःख का दूसरा नाम ही जीवन है और सच बात यह है कि काव्य में भी मुझे जीवन के सुख-पक्ष से दुःख-पक्ष अधिक भाता है।

रमेश : इस संबंध में आपका क्या विचार है हृदयेश जी ?

हृदयेश : मैं समझता हूँ करुणेश जी की यह सम्मति एकांगी है। जीवन में यदि दुःख का अस्तित्व है तो सुख की भी कमी नहीं। काव्य में दोनों को समान भाव से अभिव्यक्ति मिली है और मिलनी चाहिए। मैं स्वभाव से जीवन के सुख-पक्ष की ओर हूँ।

रमेश : आप शेष जी ?

शेष : दुःख की ओर ।

रमेश : कमलेश जी ?

कमलेश : सुख की ओर ।

रमेश : आप अखिलेश जी ?

अखिलेश : मुझे तो दुःख भाता है ।

रमेश : आपको अवधेश जी ?

अवधेश : अपने राम तो सुख के प्रेमी हैं—बस केसर पड़ी दूधिया छनती रहे ।

रमेश : आप ब्रजेश भाई साहब ?

ब्रजेश : (**सोचता हुआ**) मैं समझता हूँ सुख-दुःख की यह भावना व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है । वास्तव में न कुछ सुख है....

रमेश : (**बात काटता हुआ**) और न दुःख ।

ब्रजेश : और क्या ?

रमेश : अच्छा, आप रहने दीजिए । कविता भावनाशील व्यक्तियों के लिए है, दार्शनिकों के लिए नहीं । मेरा प्रस्ताव है कि एक ओर करुणेश, अखिलेश और शेष जी तथा दूसरी ओर हृदयेश, कमलेश और अवधेश जी अपने-अपने पक्ष को प्रमाणित करें । राधा भाभी और लता जी को अधिकार है कि वे किसी भी पक्ष से बोलें ।

लता : मैं तो सुख की प्रेमिका हूँ ।

राधा : और मैं दुःख की उपासिका ।

करुणेश : अच्छा आप पहले वसंत के इस दुःखदायी प्रभाव को देखिए—

फूलेंगे पलास बन आगि-सो लगाइ क्रूर,
कोकिल कुहुकि कल सबद सुनावैगो;
त्योंही 'हरिचंद' सब गावैंगे धमार, धीर
हरन, अबीर बीर सब ही उड़ावैगो;

सावधान होउ रे वियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनक ही में तापन मैं तावैगो;
धीरज नसावत, बढ़ावत बिरह-काम,
कहर मचावत बसंत अब आवैगो।

हृदयेश : और इस रस को भी—

फाग की भीर अभीरन त्यों गहि गोविंद लै भई भीतर गोरी,
भायो कियो मन को 'पदमाकर' ऊपर नाय अबीर की झोरी,
छीन पितम्बर कम्मर तें सु विदा दई मीड़ कपोलन रोरी,
नैन नचाइ, कही मुस्काइ, लला फिर आइयो खेलन होरी।

अखिलेश : मैं भारतेन्दु हरिश्चंद्र का दूसरा कवित्त सुना रहा हूँ, जिसमें प्रियतम के वियोग में फूलों का फूलना, आम्रबौर का महकना, कोकिल का कूकना, कुछ भी हृदय को आकर्षित नहीं कर पाता—

सुखद समीर सूखी ह्वै कै चलन लागी,
घटि चली रैन कछु सिसिर हिमंत की;
फूलै लागे फूल, फेरि बौर बन आम लागे,
कोकिलें कुहूकें लागीं, माती मदमंत की;
'हरिचंद' काम की दुहाई-सो फिरन लागी,
आवै लागी छन-छन सुधि प्यारे कंत की;
जानी परै आयु बिरहीन की सिरानी अब,
आयो चहैं रातैं फेरि दुखद बसंत की।

कमलेश : और असनी के 'ठाकुर' के इस वर्णन को मैं आपके सामने रखता हूँ जिसमें भ्रमरों की गूँज, आम्र-मंजरी की गंध, समीर की मंद गति और कोकिल की कूक मूक हृदय की विविध तानें-सी प्रतीत होती हैं—

बौरे रसालन की चढ़ि डारन कूकत क्वैलिया मौन गहै ना,
ठाकुर कुंजन-कुंजन बौरन भौंरन भीर चुपैबो चहै ना,
सीतल मंद सुगंधित बीर समीर लगै तन धीर रहै ना,
आकुल कीन्हों बसंत बनाय कै जाय कैं कंत सों कोऊ कहै ना।

रमेश : पर कमलेश जी, पद्माकर को आप क्यों भूल जाते हैं जिन्हें पलाश की लालिमा में आग, काली कोकिल की कूक में कसाईपन और और वियोगिन की वाणी में उसके हृदय का टूक-टूक होना दिखाई देता है—

ये ब्रजचंद चलो किन वा ब्रज लूक बसंत की आवन लागी,
त्यों 'पदमाकर' पेखो पलासन पावक सो मनों फूकन लागी,
वै ब्रजनारी विचारी वधू बन बावरी लौं हिये हूकन लागी,
कारी कुरूप कसाइन पै सु कूहू-कूहू क्वैलिया कूकन लागी।

ब्रजेश : और भाई रमेश 'प्रेमघन' जी को आप क्यों विस्मरण किए जा रहे हैं जो चैत की निखरी चाँदनी को देख अपने पास से किसी को उठने देना ही नहीं चाहते—

बगियान बसंत बसेरो कियो, चलिए तेहि त्यागि तपाइए ना,
दिन काम-कुतूहल के जे बने, तिन बीच वियोग बुलाइए ना,
'घनप्रेम' बढ़ाय कै प्रेम अहो, विथा वारि वृथा बरसाइए ना,
चित चैत की चाँदनी चाह भरी चरचा चलिबे की चलाइए ना।

कुछ लोग वाह ! वाह !

रमेश : (**खड़े होकर**) मैं आप सभी का बहुत कृतज्ञ हूँ जिनके कारण मेरे हृदय की उदासी बहुत कुछ दूर हो गई। आज संध्या के समय आपके नगर में प्रवेश करते ही इसकी आधुनिकता से आतंकित होकर मुझे लगा कि इस बार की होली कुछ फीकी बीतेगी और मुझे ऐसे ही उदास-हृदय लौटना होगा। लेकिन आपके बीच—

अखिलेश : (**टोकता हुआ**) आप तो व्याख्यान देने लगे साहब। बैठिए। अगर आपको गले तक न भिगो दिया तो....(**शेष जी से**) शेष जी, आज्ञा हो तो किशोरी जी के संबंध में कुछ शृंगारी रचनाएँ हो जायँ।

शेष : नहीं, नहीं, शृंगारी या अश्लील रचनाएँ नहीं होंगी। आप देखते नहीं कि राधा जी और लता जी बैठी हैं। (**इधर-उधर देखकर**) इससे अच्छा तो यह है कि कोई गीत हो।

गीत

कहूँ प्यारो भौंरा भटकि रह्यो रे !

रमेश : (**राधा से**) यह तो भाभी आपका गीत है ?

राधा : नहीं देवर,यह मेरा गीत नहीं, नारी-हृदय का गीत है। सुनिए—

इत क्यारिन नहि आयो आज,
कहूँ भौंरा भटकि रह्यो रे !
काहू गहवर की कुंज-गलिन में
काहू सरवर की कंज-कलिन में
कै भौंरिन संग रंग-रलिन में
बौरा अटकि रह्यो रे।
कहूँ प्यारो भौंरा भटकि रह्यो रे !

[गीत के स्वर धीरे-धीरे शून्य में खो जाते हैं]

जय

पात्र

राम	सीता
रावण	मंदोदरी
	त्रिजटा

नर्तकियाँ और गायिकाएँ

जय

[रावण संगीत-शाला में बैठा है। नृत्य की धुन के साथ गीत प्रारम्भ होने वाला है कि सहसा मंदोदरी प्रवेश करती है। उसे देखते ही वादकों के हाथ रुक जाते हैं, गायिकाएँ मौन रह जाती हैं। वह दशानन के पास आकर कहती है....]

मंदोदरी : नाथ, निवेदन करना है कुछ।

रावण : कहो, कहो, तुमको क्या कहना है, मयतनया।

मंदोदरी : जिस समुद्र को समझे थे लंका की खाई,
करके उसको पार, राम ने सेना लेकर,
अपनी ही नगरी में हमको ललकारा है।
मुख्य द्वार घिर चुके नगर के, मेघनाद का,
कुम्भकरण का, खरदूषण का गया सहारा;
आज रात को युद्ध आपको करने जाना।
ऐसे पल में जब संकट के मेघ घिर रहे,
ऐसे पल में जब सेनाएँ भाग रही हैं,
ऐसे पल में अश्रु नयन से जब वधुओं के,
नहीं सूख पाए हैं प्रियतम, कल कपोल से,
ऐसे पल में जब कि दिशाएँ काँप रही हैं,
अब क्या होगा ? अब क्या होगा ? अब क्या होगा ?
बैठे हुए रंगशाला में आप यहाँ पर,
नृत्य देखते सुन्दरियों का, गीत सुन रहे !

रावण : रावण ने भी जीवन को देखा है रानी !
वेदों का अध्ययन किया है, की उपासना,
युद्ध किए हैं, वैभव को एकत्र किया है।
कितनी रातें चिंतन में बीती हैं मेरी,

नहीं जानता ! लेकिन जीवन-सार मिला
दो ही बातों में—निर्भय रहना : सुख से रहना ।
मुख्य द्वार पर क्या, यदि राम यहाँ आजावें,
युद्ध-मेघ ही नहीं, प्रलय के बादल गरजें ।
रात आज यदि मुझको काल-रात्रि बन आवे,
उद्वेलित हो सागर, गगन वज्र बरसावे ।
फिर भी यह उर नहीं काँपता, नहीं काँपता ।
भाई, पुत्र, वीर मेरे सब छोड़-छोड़ कर,
चले गए परलोक, मुझे क्या पता नहीं है ?
फिर भी दुख में ब्राह्मण करते शोक नहीं हैं ।
कुल-वधुओं के नयनों से जो अश्रु बह रहे,
युद्धभूमि में वे ही तो मुझको बल देंगे;
भीरुमना, तुमको भय कैसा ? चिंता का यह
समय नहीं है । रोग-शोक में, जन्म-मरण में,
जीवन का यह तार न टूटे,....तार न टूटे ।

[रावण के संकेत करते ही समवेत स्वर से गान प्रारम्भ होता है]

गान

जीवन का रस सूख न जाए, जीवन तो मधुमास रे !
यह जीवन जैसे उपवन फूला,
इस पर मन का भँवरा भूला,
डाल-डाल पर
फूल-फूल पर
झूम-झूम झुक-झुक कर झूला,
जीवन फूल का हास सखी री, जीवन फूल की वास रे !
जीवन तो मधुमास रे !
जीवन क्वार की चंद्र-किरन री,
जीवन गंधभरा चंदन री,

मांग रहा मन
जिसके बंधन
रसमय जीवन का कन कन री।
जीवन का दुख से क्या नाता, जीवन सुख की साँस रे।
जीवन तो मधुमास रे !

रावण : अच्छा रानी, अब तुम राज-भवन में जाओ,
मैं अशोक-वन में सीता से बात करूँगा।

मंदोदरी : मैं भी साथ चलूंगी, प्रियतम !

रावण : एक तापसी की पत्नी से
बात करे लंका की रानी,
यह महान सम्राज्ञी के या उसके पति के गौरव के अनुकूल नहीं है।

मंदोदरी : जैसी आज्ञा !

[जाती है]

* * *

[**अशोक बाटिका में सीता एक वृक्ष के नीचे शांत भाव से बैठी हैं। त्रिजटा आती है।**]

त्रिजटा : देवी सीते,

सीता : चुप कैसे हो गईं ? कहो जो कहना तुमको !
दूर खड़ी क्यों ? आओ मेरे पास, तुम्हीं दुख से बोझिल
एकांत क्षणों की एकमात्र संगिनि हो सखि, क्या कहना तुमको ?
चुप कैसे हो गईं ?

त्रिजटा : आज रात,
निर्णायक अंतिम युद्ध राम-रावण का होगा।
आए राक्षसराज आपका दर्शन करने,
आज्ञा हो तो देवि,
बात कुछ अंतिम कहने,
डरती थी यह बात आपके आगे
करूँ निवेदन कैसे ?

सीता : आये राक्षसराज, राज्य है उसका त्रिजटा,
लंका की सब भूमि उसी की,
यह अशोक वन उसका ही है।
मैं तो यहाँ वंदिनी हूँ।
मुझसे आज्ञा की बात
कहाँ उठती है पागल !
मेरा दर्शन ?
करते हैं सम्राट वंदियों के दर्शन क्या ?
मुझसे बातें ?
बंधन के कुछ नियम कड़े करने की बातें
कोई अनुचर कह सकता था।
फिर भी जो सूचना आगमन की लाई हो,
उठकर मैं सत्कार तुम्हारे राजा को दूँ,
यह आशय हो, तो त्रिजटा, तू, तेरा राजा
दोनों ही भ्रम में हैं।
मैं यह कर न सकूँगी।

(**रावण का प्रवेश**)

रावण : मैं तो आया स्वयं आपको आदर देने।
किसने कहा कि आप वंदिनी हैं रावण की ?
किसने कहा कि नियम कड़े करने आया हूँ ?
किसने कहा कि रावण भूखा है आदर का ?

सीता : फिर यह क्या है ?

रावण : एक दिवस जिस पंचवटी में कभी आप थीं,
वहीं घूमती हुई बहिन मेरी पहुँची थी;
हो सकता है उसने कुछ अपराध किया हो;
पर लक्ष्मण ने, पा संकेत बड़े भाई का
निर्दय होकर उसका अंग-भंग कर डाला।
आप वहाँ थीं,
नारी थीं,

संस्कृत,
सदया थीं;
मौन रहीं पर !

सीता : नारी जिस क्षण आततायिनी हो उठती है,
नारी की संज्ञा से वंचित हो जाती है,
उसको उसी दृष्टि से तब देखा जाता है।

रावण : मुझको भी तो सूचित कर सकते थे राघव ?

सीता : समय नहीं था।
तब तुमने प्रतिशोध लिया है ?

रावण : यह केवल प्रतिशोध नहीं है,
इसके पीछे
वर्षों की चिनगारी ज्वाला बनकर देवी,
धधक उठी है !

सीता : कैसी ज्वाला ?
कैसी चिनगारी वर्षों की ?

रावण : मुझे याद है,
जनकपुरी में,
धनुष-यज्ञ के समय सभा में वरमाला ले,
जहाँ आप चलती थीं, खिल उठते थे शतदल,
जहाँ देखतीं इन्द्र-धनुष उगते थे; अंचल
जहाँ सिहरता, शत-शत उर पुलकित होते थे;
फूट अंग-छवि दीपशिखा-सी
शत-शत उर के जन्म-जन्म के घन विषाद को
चीर-चीर देती थी,
जावक चरणों का
शत-शत ऊषा की सृष्टि कर रहा;
वेणी में जो श्वेत पुष्प थे
लगते माया में आत्मा के फूल खिले हैं।

वहाँ, जहाँ लाखों ही मुग्ध हुए थे देवी,
मैं भी उस अपरूप रूप पर मुग्ध हुआ था ।

सीता : तब क्यों लौटे वीर
पराजित होकर उस दिन ?

रावण : छल था देवी,
वह तो प्रतियोगिता नहीं थी ।

सीता : छल था ?

रावण : शिव का-धनुष उठाने को मैं उठा
कि त्यों ही;
आर्य लोग चिल्लाए,
गुरु का धनुष छुओगे ?
इसे उठाकर तोड़ोगे तुम ?
लौट पड़ा मैं ।
आप बच गईं राक्षस की पत्नी होने से ।
पर राक्षस भी....
हृदयवान है ।
उस दिन हृदय-निकष पर जो अंकित कर लाया
स्वर्ण-रेख,
वह-झलक-झलक उठती है देवी,
जीवन के घन अंधकार में,
उसके आगे
सोने की लंका फीकी पड़-पड़ जाती है ।

सीता : लेकिन सुनती हूँ,
रावण के अन्तःपुर में
दीपशिखाएँ रम्य रूप की जलतीं शत-शत ।
किसी जाति की सुकुमारी सुन्दरी बालिका
नहीं बची है,
अपनी रूप-छटा से जगमग

उसका भवन न करती हो जो !

रावण : आप ठीक कहती हैं देवी,
किन्तु यक्ष, किन्नर, गंधर्वों, देव, दानवों ने
जो अपनी कन्याएँ दीं,
हार-हार कर
युद्ध-भूमि में,
हाँ,
उनको स्वीकार किया है।
पर देवी, मैं उनके प्रति अनुरक्त नहीं था।
आकर्षण क्या है,
इसको उस दिन ही जाना,
जिस दिन जनकपुरी में, शोभा की छाया में,
मेरे प्यासे प्राणों को कुछ शांति मिली थी।

सीता : यक्ष, देव, किन्नर, गंधर्व और राक्षस की,
कन्याओं का कैसा मन होता है रावण,
नहीं जानती।
पर मनुष्य की दुहिता होकर
इतना ही कह सकती हूँ,
वह
अपने पति को छोड़ अन्य का चिंतन करना पाप समझती।

रावण : पर मेरा अनुराग विफल होगा क्या, देवी ?

सीता : प्रेम
शक्ति से, प्रलोभनों से, दुष्ट तर्क से,
भय से,
प्राप्त नहीं होता है।
मेरे उर का प्रेम जिसे मिलना था उसको प्राप्त हो चुका,
जन्म-जन्म को प्राप्त हो चुका।
महाभाव यह

एक बार जब जग जाता है,
नहीं बदलता।
पल-पल पर यह नहीं बदलता।
इसके ग्रहण दान को निर्मल हृदय चाहिए।
भौतिक-मद से अंध हृदय में अरे, दशानन,
वह निर्मल प्रतिबिंब प्रेम का नहीं जागता।
'आकर्षण' 'आकर्षण' जो तुम चिल्लाते हो,
आकर्षण क्या है,
इतना तक नहीं जानते।

रावण : आकर्षण यदि नहीं देवि, तो फिर यह क्या है ?

सीता : एक अंध दुर्दांत वृत्ति से ताड़ित होकर
घूम रहे हो।....घूम रहे हो।
शांति नहीं है।....शांति नहीं है।

रावण : जीवन में जो सोचा वैसा कर दिखलाया,
जीवन में जो चाहा उसको प्राप्त कर लिया,
इतना है इतिहास देवि, मेरे जीवन का।
तुमसे मन का टकराना मेरे जीवन की
पहली बाधा है,
जो अब तक बनी हुई है।
किसे पराजय कहते हैं, जीवन में देवी,
मैंने जाना नहीं।
मुझे विश्वास अभी है,
जीत राम को,
जीत सकूँगा तुमको भी मैं।

सीता : त्रिजटा,
इससे कहो,
कि....
संयत होकर बोले।

त्रिजटा : महाराज,
देवी शरीर से स्वस्थ नहीं हैं,
जो इतनी बातें कीं
वह भी बड़ी बात है,
उनको बातें करने का अभ्यास नहीं है,
क्षमा करें प्रभु ।

रावण : जाता हूँ, त्रिजटा, जाता हूँ, क्षुब्ध न हों वे ।

सीता : त्रिजटा, इससे कहो कि यह भगवान राम की,
आर्य-भाव को....
पहली जय है ।

रावण : है मेरा विश्वास यत्न करने से जग में,
जो अलभ्य है वह भी मिल जाता है, देवी,
जाता हूँ, अब ।

(जाता है)

(त्रिजटा गुनगुनाती है)

ए री, मैं तो सेवा का वर पाऊँ ।
सबका जीवन मेरा जीवन, सबमें घुल-मिल जाऊँ ।
सबके दुख में नीर बहाऊं, हँसने पर मुसिकाऊं ।।
एरी मैं तो....
मैं मरने पर स्वर्ग न चाहूँ, धरती स्वर्ग बनाऊँ ।
अपने सुख की बात न सोचूँ, सुख देकर सुख पाऊँ ।।
एरी मैं तो....
ना जप जानूं, ना तप जानूं, ना मैं भस्म रमाऊँ ।
सबकी सेवा मेरी पूजा, मर जाऊं, तर जाऊँ ।।
एरी मैं तो....

(गाती-गाती जाती है)

* *

(रावण का रथ युद्ध-भूमि में राम के सामने आकर खड़ा होता है)

रावण : तापस !
करने युद्ध....
आज रावण आया है।

राम : यह मैं राम खड़ा हूँ आगे।

रावण : अब भी बहुत समय है, राघव !
तुम चाहो तो अभी मार्ग मिल सकता तुमको।
मेघनाद, खरदूषण, कुंभकरण को रण में
किया पराजित, इस यश को लेकर फिर जाओ।
सीता का क्या मोह ?
सुना है मैंने....
तुम भी तो राजा हो।
राजा होकर रमणी से यह मोह ?
कमी क्या राजाओं को ?
चाहे जिसे बना दें रानी।

राम : मैं जीवन में मार्ग किसी से नहीं माँगता,
अपना मार्ग बनाता हूँ मैं,
मार्ग बनाता ही आया हूँ इस नगरी तक,
मैं क्षत्रिय हूँ।
करना ही आखेट धर्म मेरा हिंस्रों का।
सीता का यह प्रश्न नहीं है।
तुमने जनकसुता को न भी चुराया होता,
तब भी क्या तुम अपने प्राण बचा सकते थे ?
तुमने जिस जीवन-दर्शन को अपनाकर
जिस संस्कृति का विष फैलाया है,
तुमने भौतिक बल के मद में
ब्राह्मण पर, अबलाओं पर, निरीह ऋषियों पर

जितने अत्याचार किए हैं,
उन्हें मिटाने आया हूँ।
तुम आज राम के केवल शत्रु नहीं हो
संस्कृति के दुश्मन हो।
रावण-राम निमित्त मात्र हैं,
सीता का यह हरण
एक कारण है केवल,
यह रावण का और राम का युद्ध नहीं है,
आर्य-अनार्य संस्कृतियों की टक्कर है यह।
जो कुछ शुभ्र प्रतीक आर्य सभ्यता उसी की :
जो कुछ अशुभ उसी के तो राक्षस पोषक हैं।
अंधकार घिर आवे, पर वह सत्य नहीं है,
उसे सूर्य की प्रखर किरण चीरकर रहेगी।

रावण : तुम तापस ही नहीं, धर्म के भी ज्ञाता हो !
क्या है शुभ, क्या अशुभ,
इसे ब्राह्मण को
क्षत्रिय समझावेगा ?

राम : ब्राह्मण के घर जन्म मात्र से ब्राह्मण होना,
ब्राह्मण का यह अर्थ नहीं है;
और ज्ञान का उदय नहीं क्षत्रिय में होगा,
मैंने देखा ऐसा कहीं विधान नहीं है;
कुछ सात्विक विभूतियों को ब्राह्मण कहते हैं,
वैसे ही कुछ गुण समूह की संज्ञा क्षत्रिय;
अत्याचारी, मदिरा सेवी, कुटिल, चोर को
मैं कम से कम ब्राह्मण कहते सकुचाता हूँ।

रावण : राम मुझे भड़काने का मत यत्न करो तुम।
जीवन है तो सब कुछ है
अब भी फिर जाओ।

राम : तुम तो ऐसे बोल रहे ज्यों महाकाल पर
एकमात्र अधिकार तुम्हारा,
जीवन-मरण हाथ में लेकर घूम रहे ज्यों,
जिसको चाहो उसको बाँटो,
बातें करने से क्या होगा,
लो, यह मेरा बाण सँभालो।

* * *

[सीता के पास मंदोदरी जाती है]

सीता : आप कौन हैं ? क्यों आई हैं ?

मंदोदरी : वह अभागिनी नारी हूँ मैं, जिसके पति ने
वह गुरुतर अपराध किया है, जिसको प्राणी
क्षमा अगर कर भी दे, फिर भी महाप्रकृति यह
क्षमा नहीं करने वाली है,
मंदोदरी नाम है मेरा !

सीता : आओ बहिन, तुम्हारे यश की गाथा
त्रिजटा ने गाई थी; मेरी इच्छा थी
मैं तुमको कभी देख पाऊँ, पूरी वह
साध हुई अब। तुम अपने को,
क्यों अभागिनी कहतीं, रानी !
ऐसा क्या है शेष लोक में
तुम्हें नहीं जो प्राप्त हुआ है ?
वैभव, यश, संतति सब कुछ है।

मंदोदरी : पुरुष महत्त्वाकांक्षी है, वह अपने बल से
पार समुद्रों को करता, धरती की छाती
चीर उगाता अन्न, बनाकर यंत्र
वायु में उड़ जाता है, पृथ्वी का जो
रस है, उसका वह भोक्ता है।
उसे मिली है बुद्धि कि जिससे

वह धरती पर स्वर्ग उतारे।
पर वह प्रायः दुरुपयोग करता निज बल का।
नारी को जो जन्म मिला है
उसका आशय
नर की पत्नी बनने से
थोड़ा गभीर है,

सीता : क्या महारानी ?

मंदोदरी : अहंकार के वशीभूत हो
जब मनुष्य भटके, तब नारी
उसको हित का मार्ग दिखावे;
उसे बहकने न दे, हो सके
निज जीवन की आहुति दे दें।
मुझे दुःख है मैं प्रयत्न कर-कर के हारी
निज कर्त्तव्य निभा न सकी मैं;
मुझे दुःख है,
निज पति को समझा न सकी मैं;
नारी होकर तुमको कैसे मुँह दिखलाऊँ ?

(त्रिजटा का प्रवेश)

त्रिजटा : क्षमा महारानी,
पर मुझको....
आवश्यक सँदेश देना है।

सीता : क्या सँदेश लाई है सखि तू ?
शीघ्र सुना तो,
मेरे बायें अंग फड़कते
शुभ सँदेश ही लाई है ना ?

मंदोदरी : क्या है त्रिजटा ?

त्रिजटा : हुए राम विजयी सम्राज्ञी, महाराज ने
पर जैसी वीरता दिखाई; राम कह उठे :

शत्रु अगर हो, तो ऐसा हो !

मंदोदरी : क्या वे बंदी हुए ?

त्रिजटा : नहीं, वे मुक्त हो गए,
इस देही के बंधन से चिर मुक्त हो गए।

[**मंदोदरी गिर पड़ती है**]

सीता : त्रिजटा ! इन्हें सँभालो सखि,
ये तो मूर्च्छित हैं !

त्रिजटा : राज्य विभीषण ने पाया, भगवान राम का
वह अनन्य सेवक भी था, सब प्रजा यहाँ की
धन्य ! धन्य ! कह उठी सुना जब निर्णय प्रभु का
उनके दर्शन आप शीघ्र ही कर पायेंगी।
मुझको आज्ञा हो, तो मैं ये केश सँभालूँ ?

सीता : अच्छा त्रिजटा !
तूने जो मुझको यह शुभ संदेश दिया है
उसके बदले में मैं क्या दूँ ?

त्रिजटा : जैसे पुरुषोत्तम भगवान राम हैं देवी !
त्यों उज्ज्वल नारीत्व अर्थ है जनकसुता का।
मैंने एक मूर्ति निर्मित की है देवी की।
इस अशोक वन को जब आप छोड़ जायेंगी,
इसके पत्ते पीले पड़कर झर जायेंगे।
तब कैसा सूना-सूना यह वृक्ष लगेगा !
तब कैसा उजड़ा-उजड़ा यह उपवन होगा।
अपने हाथों से मैंने जो मूर्ति गढ़ी है
उसे यहाँ पर स्थापित करके
संध्या समय
चरण में
छोटा दीप जलाकर,

पूजा किया करूँगी देवी !
मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।

सीता : जब मैं अवधपुरी में हूँगी, प्यारी त्रिजटा,
तेरी बहुत याद आयेगी ।

त्रिजटा : राम प्रतीक्षा करते होंगे,
मैं देवी के जाने का कुछ यत्न करूँ तो !
(जाती है)

[दूर से गीत सुनाई देता है । ध्वनि पास आती जाती है]

समवेत गान

विजयी राम हुए, घड़ी यह मंगल की आई ।
आँधी-सी घिर आई थी जो,
काली बदली छाई थी जो,
आज विलीन हुई, चाँदनी भू पर लहराई ।
सुख के घन से छलक पवन में,
आँगन में, बन में, मन-मन में,
बरस रहा आनंद धरा पर हरियाली छाई ।
घड़ी यह मंगल की आई ।

S0-FKP-016